मासिक

# अक्षर वार्ता

RNI No. MPHIN/2004/14249

वर्ष - 21 अंक - 4
( फरवरी - 2025 )
Vol - XXI, Issue No - IV
(February - 2025)

मूल्य: 100 /- रूपये

डाक पंजीयन क्र. मालवा डिवीजन - L2/65/RNP/399/2024-2026

कला-मानविकी-समाजविज्ञान-जनसंचार-वाणिज्य-विज्ञान-वैचारिकी की अंतर्राष्ट्रीय रेफर्ड एवं पियर रिव्यूड शोध पत्रिका

IIFS 8.0 Impact Factor 2025

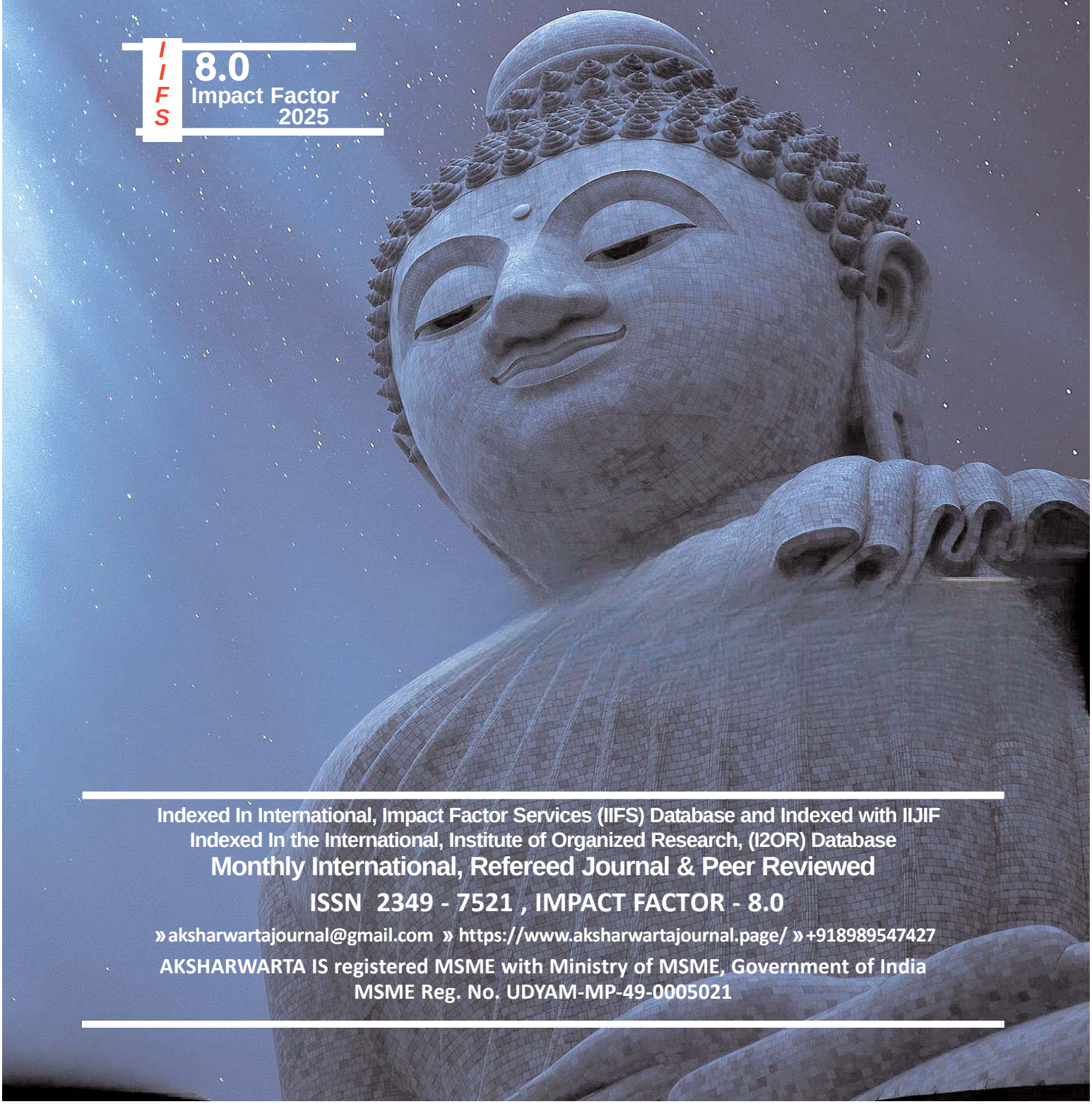

Indexed In International, Impact Factor Services (IIFS) Database and Indexed with IIJIF
Indexed In the International, Institute of Organized Research, (I2OR) Database
Monthly International, Refereed Journal & Peer Reviewed
ISSN 2349 - 7521 , IMPACT FACTOR - 8.0

» aksharwartajournal@gmail.com » https://www.aksharwartajournal.page/ » +918989547427

AKSHARWARTA IS registered MSME with Ministry of MSME, Government of India
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021

ISSN 2349 - 7521
RNI No. MPHIN/2004/14249

मासिक

# अक्षर वार्ता

मूल्यः 100 /- रूपये

MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021

वर्ष-21 अंक - 4 , फरवरी - 2025
Vol - XXI, Issue No. IV
February - 2025
Impact Factor - 8.0
aksharwartajournal@gmail.com

**Monthly International Refereed & Peer Reviewed Journal**

प्रधान संपादक
प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा
कुलानुशासक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

संपादक
डॉ. मोहन बैरागी
अक्षरवार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका

**संपादक मंडल**

प्रो. जगदीशचन्द्र शर्मा, प्राध्यापक
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
प्रो. राजश्री शर्मा, प्राध्यापक
माधव महाविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
प्रो. डी. डी. बेदिया, विभागाध्यक्ष
पं. जवाहर लाल नेहरू व्यवसाय प्रबंध
संस्थान, एवं निदेशक, आईक्यूएसी,
विक्रम युनिवर्सिटी, उज्जैन, मप्र.
डॉ. शशि रंजन 'अकेला' जनसंपर्क
अधिकारी, आरजीपीवी, भोपाल, मप्र.
प्रो. उमापति दिक्षित, प्राध्यापक
केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, उप्र.
प्रो. मोहसिन खान, विभागाध्यक्ष
शासकीय महाविद्यालय, रायगढ़, महाराष्ट्र
डॉ. दिग्विजय शर्मा, सहायक प्राध्यापक
केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, उप्र.
डॉ. भेरूलाल मालवीय, सहायक प्राध्यापक
शा. नवीन महाविद्यालय, शाजापुर, मप्र.
डॉ. उपेन्द्र भार्गव, सहायक प्राध्यापक
महर्षि पाणिनि विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
डॉ. रूपाली सारये, सहा.प्राध्यापक
भाषा विभाग, देवी अहिल्या वि.वि., इंदौर
डॉ. अवनीश कुमार अस्थाना, एसो. प्रोफेसर,
डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम वि.वि, इंदौर, मप्र.
डॉ. पराक्रम सिंह, के.हि.सं., दिल्ली

*विशेषज्ञ समिति*

डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक' (नार्वे), श्री शेर बहादुर सिंह (यूएसए), डॉ. रामदेव धुरंधर (मॉरीशस),
डॉ. स्नेह ठाकुर (कनाडा) डॉ. जय वर्मा (यू.के.), प्रो. गुणशेखर गंगाप्रसाद शर्मा (चीन), डॉ. अलका धनपत (मॉरीशस),
प्रो. टी. जी. प्रभाशंकर प्रेमी (बैंगलुरू), प्रो. अब्दुल अलीम (अलीगढ़), डॉ. सोहेल मो. यूसूफ (ओमान), डॉ. रवि शर्मा (दिल्ली),
डॉ. सुधीर सोनी (जयपुर), डॉ. अनिल सिंह (मुंबई), डॉ. तुलसीदास परौहा, महर्षि पाणिनि संस्कृत विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

*सह संपादक*

डॉ. उषा श्रीवास्तव (कर्नाटक), डॉ. मधुकांता समाधिया (उत्तर प्रदेश), डॉ. अनिल जूनवाल (मप्र), डॉ. प्रणु शुक्ला (राजस्थान),
डॉ. मनीष कुमार मिश्रा (मुम्बई/वाराणसी), डॉ. पवन व्यास (उड़ीसा), डॉ. गोविंद नंदाणिया (गुजरात), डॉ. रत्ना कुशवाह, (अंडमान निकोबाद),
प्रो. डॉ. किरण खन्ना (अमृतसर, पंजाब)

आवरण चित्र - इंटरनेट से साभार

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र. से शोध, प्रकाशन, सेमीनार, संगोष्ठी, अवार्ड आदि के लिए अक्षर वार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका एवं संस्था कृष्ण बसंती शैक्षणिक एवं सामाजिक जनकल्याण समिति, उज्जैन, मप्र. एम ओ यू हस्ताक्षरित।

*नोट:- अक्षरवार्ता में सभी पद मानद व अवैतनिक है।/ शोध पत्रिका में प्रकाशित सभी लेखों में लेखकों के अपने विचार है, संपादक मंडल का इससे सहमत होना आवश्यक नही हैं।*

**Peer Review Board/Committee**

1. **Dr. Anamika Dwivedi, Associate Professor, Hindi, A.K.P (PG) College, Khurja, U.P.**
2. **Dr. Deepshikha, Assistant Professor, Sanskrit Manyawar Kanshiram Rajkiya Mahavidhyalaya, Gabhana, Aligadh, U.P.**
3. **Dr. Roshni, Guest Feculty, Hindi Maharana Pratap Govt. PG College, Gadawara, Narsinghpur, M.P.**
4. **Dr. Rashmi (Raikumar), Assistant Professor, English, Y.B.N. University, Namkum, Ranchi, Jharkhand**
5. **Dr. Arun Kumar Singh, Associate Professor DAV PG College, Azamgadh, U.P.**
6. **Dr. Neetu Tiwari, Professor M.B. Khalsa Law College, Indore, M.P.**
7. **Dr. Santosh Patidar, Lecturer Chameli Devi Institute of Law, Indore, M.P.**
8. **Dr. Sanjay Kumar, HoD, English Department Y. B. N. University, Ranchi, Jharkhand**
9. **Dr. Krishna Raj SIngh, Assistant Professor Shrimati Gomati devi bind PG College, Prayagraj, U.P.**
11. **Dr. Meenu Shukla, Assistant Professor Navsamvat Law College, Ujjain, M.P.**
12. **Dr. Soniya Rani, Associate Professor Y. B. N. University, Ranchi, Jharkhand**
13. **Dr. Shahanaj Mahemudsha Sayyad, Associate Professor Balwant College, Vita, Distt - Sangli, Maharashtra**
14. **Dr. Umesh kumar Sharma, Assistant Professor, Hindi Department Shri Radha Krishna Goenka college, Sitamarhi (Bihar)**
15. **Dr. Dinesh Ram, Assistant Teacher LT Hindi Govt H. S.S, Kalakot, Uttarakhand**
16. **Dr. Nilamadhab Pradhan, Assistant Professor (Guest), Department of Sanskrit Rama Devi Women's University, Bhoi Nagar, Bhubaneswar, Odisha**
17. **Dr. Manju, Assistant Professor Govt. College, Kishangarh Renwal, Jaipur, Rajasthan**
18. **Dr. Manju Chouhan, Assistant Professor, Sanskrit, Govt. Girls College Shri Kolayat, Bikaner, Rajasthan**
19. **Dr. Priyanka Bhatewara Jain, Assistant Professor, (Guest Feculty) Govt. College, Manawar, Dhar, M.P.**
20. **Dr. Brajesh Kher, Ex. Assistant Professor Bhartiya College, Ujjain, M.P.**
21. **Dr. ShriKant Mishra,Assistant Professor Govt. Maharaja Martand College, Kotma, Distt-Anuppur, M.P.**
22. **Dr. Babita Yadav, Assistant Professor, HoD of Art's Department Navsamvat Law College, Ujjain, M.P.**
23. **Dr. Preeti, Assistant Professor, Hindi Department, Motihari Degree Evening College, Muzaffarpur**
24. **Dr. Rita Kumari, Assistant Professor Kishori Sinha Mahila College, Aurangabad, Bihar**
25. **Dr. Shaileshkumar Chhatrasingh Chaudhari, Teacher, Genius Educational Academy (CBSE) School, Mohani Village, Surat, Gujrat**
26. **Dr. Poonam Pandey, Ex. Research Scholar, English,Dr. Rammanohar Lohia avadh University, Faizabad Ayodhya, U.P**

### शोध आलेख प्रकाशन संबंधी नियम

शोध आलेख 2000 से 3000 शब्दों का होकर यूनिकोड मंगल अथवा कृतिदेव 10 में 12 के फॉन्ट साइज में ही भेजें। शोध आलेख एपीए एमएलए फार्मेट में होना आवश्यक होकर फुटनोट व रिफ्रेंसेस के साथ भेजना आवश्यक है। अंग्रेजी माध्यम के शोध-पत्र टाईम्स न्यु रोमन (Times New Roman) ,एरियल फोंट (Arial) में टाईप करवाकर माईक्रोसॉफ्ट वर्ड में अधिकतम 2000 की शब्द संख्या के साथ अक्षरवार्ता के ईमेल पर भेजने के बाद हार्ड कॉपी तथा शोध-पत्र मौलिक होने के घोषणा-पत्र के साथ हस्ताक्षर कर अक्षरवार्ता के कार्यालय को प्रेषित करें। शोध आलेख का प्रकाशन रिव्यू कमेटी द्वारा अनुसंशा के आधार पर किया जावेगा।

### पुस्तकों से संदर्भ देने के लिए क्रम

लेखक का अंतिम नाम (सरनेम), पहला नाम; पुस्तक का शीर्षक (इटैलिक्स में; प्रकाशक का नाम और पूरा पता (प्रकाशन का वर्ष) कोष्ठक में; पृष्ठ संख्या ....।

***द्विवेदी,हजारी प्रसाद, कबीर, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, चौदहवीं आवृति, 2014, पृ. 108***

### पत्रिकाओं के संदर्भ

लेखक का अंतिम नाम (सरनेम), पहला नाम। लेख का शीर्षक। जर्नल का शीर्षक/नाम (इटैलिक्स में)। वॉल्यूम। संस्करण (महिना, वर्ष) : पृष्ठ संख्या। प्रकाशन मीडिया।

### वेबसाइट के उद्धरण का प्रारूप

लेखक का अंतिम नाम (सरनेम), पहला नाम। ''पृष्ठ का शीर्षक।''
क्षेत्र शीर्षक। (साईट) प्रकाशित करने वाली कंपनी। (युआरएल) तथा सर्च डेट (अभिगमन तिथि)।
पुस्तक, पत्रिका, आवधिक, वेबसाइट आदि) के शीर्षक को इटैलिक में लिखें।
शोध आलेख के साथ प्लेगरिज़्म रिपोर्ट / स्व घोषणा पत्र (आलेख की मौलिकता व अप्रकाशित होने के संदर्भ में) अवश्य भेजें।
आलेख की वर्ड और पीडीएफ दोनों फाइल् अनिवार्य रूप से भेजें।
शोध आलेख प्रत्येक माह की 7 तारीख तक आगामी माह के अंक के लिए स्वीकार्य होंगे।
शोध आलेख का प्रकाशन रिव्यू कमेटी द्वारा अनुसंशा के आधार पर किया जावेगा।

*I/ We wish to subscribe the Journals. Total Amount : 1200/- (Twelve hundred only )(INR), (Normal Post) and/or 1800/- (Eighteen Hundres) for (Registerd Post) Registration Fee. All fee and Subscriptions are payable in advance and all rates include postage and taxes. Subscribers are requested to send payment with their order whenever possible. Issues will be sent on receipt of payment. Subscriptions are entered on an annual basis and are subject to renewal in subsequent years.*

*Subscription from:.....to.....SUBSCRIBER TYPE:(Check One) Institution( )/Personal ()Date:.....Name/Institution and Address :.....City : .....State :.....PinCode..... Country ..... PhoneNo .:..... MobNo.:..... Mail id.....*

*PAYMENT OPTION:*

*DD in the favor of "AKSHARWARTA" payable at UJJAIN.*

*DD No.: .....Dated : .....for Rupees (in words) .....Drawn on .....Any other option Specify :.....*

---

### शोध-पत्र भेजने संबंधी नियम

शोध-पत्र 2000-3000 शब्दों से अधिक नही होना चाहिये। ०. हिन्दी माध्यम के शोध पत्रों को कृतिदेव 010 (**Kruti Dev 010**) या युनिकोड मंगल फोंट में टाईप करवाकर माईक्रोसॉफ्ट वर्ड में भेजें। ०. अंग्रेजी माध्यम के शोध-पत्र टाईम्स न्यु रोमन (**Times New Roman**) ,एरियल फोंट (**Arial**) में टाईप करवाकर माईक्रोसॉफ्ट वर्ड में अक्षरवार्ता के ईमेल पर भेजने के बाद हार्ड कॉपी तथा शोध-पत्र मौलिक होने के घोषणा-पत्र के साथ हस्ताक्षर कर अक्षरवार्ता के कार्यालय को प्रेषित करें। ०. **Please Follow- APA/MLA Style for formatting** अक्षरवार्ता का वार्षिक सदस्यता शुल्क रूपये 1200/-रूपये साधारण डाक से एवं 1800/- रूपये रजिस्टर्ड डाक से एवं प्रकाशन पंजीयन शुल्क रूपये 1500/- का भुगतान बैंक द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है।

बैंक विवरण निम्नानुसार है-

**Union Bank of India,**

**Account Holder- Aksharwarta**
**Current A/c. No- 510101003522430**
**IFSC- UBIN0907626**
**Branch- Rishi Nagar, Ujjain, MP, India**

**UPI**
**Phone Pay,**
**Google Pay**
**PayTM, BHIM**
**9424014366**

गुगल पे, फोन पे, पेटीएम, भीम आदि युपीआई से भुगतान के लिए मोबाईल नं. 9424014366 का अथवा स्केनर का उपयोग करें तथा भुगतान की मूल रसीद,शोध-पत्र एवं सीडी के साथ कार्यालय के पते पर भेजना अनिवार्य है।

» मुंशी प्रेमचन्द और उनका उपन्यास साहित्य
डॉ. संज्ञा सिंह 08
» वर्तमान भारतीय संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक अपराधीकरण का परिदृश्य
मुकुल कुमार सिंह 12
» जनसंचार एवं जन माध्यमों में हिन्दी का स्वरूप
निवेदिता स्वरूप, डॉ. रेखा चौधरी 16
» वर्तमान परिदृश्य में स्थानीय स्व-शासन से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों में पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता
डॉ. ब्रजेश खेर 20
» वंचितों के लिए समावेशी शिक्षा : चिंताएं, चुनौतियां तथा उनकी भावी नीतियाँ
कल्पेश व्यास, प्रो. ममता गुप्ता 23
» श्रीरामभद्राचार्य जी कृत 'श्रीनीराजनवलि' में देवत्व का चित्रण और उनकी आध्यात्मिक दृष्टि
सुरेश चंद मीना, डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल 26
» हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन की समस्याएँ
डॉ. रोज़ी. पी. वर्गीज़ 28
» भारतीय ज्ञान परंपरा में योग-एक सनातन परंपरा
मयूरी शिवहरे, डॉ. ज्योति गोयल 30
» 'शिकंजे का दर्द' - दलित नारी के संघर्ष की गाथा
डॉ. सनु थोमस 32
» भाषा का बालक की शैक्षिक उपलब्धि में भूमिका का अध्ययन
अनिल कुमार कश्यप, प्रो. (डॉ.) तबस्सुम खान 34
» समतापरक भारत का सपना और दलित साहित्य की सर्जनात्मकता
छोटी मीना 37
» ब्रज क्षेत्र की लोक संस्कृति के विविध आयामों में शिक्षा
मनोज कुमार, डॉ. अंजू लता 39
» भारत में पंचायती राज व्यवस्था का विकास : ऐतिहासिक विश्लेषण 'एक देश एक चुनाव'
डॉ. मुकेश कुमार यादव, ममता पाण्डेय 42
» स्वतंत्रता आंदोलन की महान नायिका : अरूणा आसफ अली
डॉ. जितेंद्र कुमार बरबड़ 45
» श्रीलाल शुक्ल की कहानियों में सामाजिक दर्शन : एक आलोचनात्मक विवेचन
रमेश वसुनिया, डॉ. सी. एल. शर्मा 48
» 21वीं सदी के संस्मरण - साहित्य में चित्रित आधुनिक संस्कृति
मलय नीरव 50

» **Financial Independence in Women : Trends, Progress, and the Impact of COVID - 19**
**Dr. Sandeep Kumar Gupta** ~~160~~
» **Mental Health of Working and Non-Working Women in Tribal Areas**
**Neeta Jain, Dr. Pubalin Das** ~~160~~

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# मुंशी प्रेमचन्द और उनका उपन्यास साहित्य

**डॉ. संज्ञा सिंह**

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, स्व. श्यामता प्रसाद चौधरी महिला महाविद्यालय खरबौरा बस्ती, कटरा-श्रावस्ती

'कलम की सिपाही: 'उपन्यास सम्राट' नाम से सुविख्यात ग्रामीण जीवन की साक्षात् प्रतिमूर्ति मुंशी प्रेमचन्द साहित्याकाश के दैदिप्यमान नक्षत्र हैं। साहित्य जगत में उनका आगमन एक नए युग का आगाज था। यह वह युग था जब हमारा देश भारत विदेशी दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ कराह रहा था। आर्थिक सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिदृश्यों पर उथल-पुथल मची थी। प्रेमचन्द एक ग्रामीण परिवार से थे उन्होंने अंग्रेजों की क्रूरता को देखा भोगा और समझा था। कृषकों, श्रमिकों, स्त्रियों जमींदारों सबकी परिस्थितियों का धरातल के यथार्थ पर साक्षात् अध्ययन किया था। उसका यथार्थ चित्रण उन्होंने अपनी विविध साहित्यिक विधाओं में किया। यद्यपि वे अच्छे कहानीकार थे तथापि उपन्यास लेखन में जो ख्याति उन्होनें पाई वह अवर्णनीय है, अकथनीय है। साहित्य सृजन का समारम्भ उन्होंने 1901 ई0 में किया। 1901 ई0 में उन्होंने 'प्रेमा' नामक उपन्यास उर्दू में लिखा। जल्दी ही उनकी लेखनी की धूम मच गई। उन्होंने भारत के किसानों की दशा-दुर्दशा का चित्रण कर जनमन की आत्मा को झकझोर दिया। स्त्री विमर्श भी उनके प्रणयन का प्रमुख हिस्सा रही। मजदूर वंचित, पारिवारिक, समस्याएँ, अनमेल-विवाह विधवा-विवाह, अछूतोद्धार, घूसखोरी, वैश्या उद्धार, मद्यनिषेध राष्ट्र-प्रेम, अंग्रेजों के विरोध के स्वर उनकी लेखनी से प्रस्फुटित हुए हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से जन-जागृति का महान कार्य किया। हिन्दी की पत्र- पत्रिकाओं में भी उन्हें सम्मानीय स्थान प्राप्त हुआ। उनमें एक सच्चे साहित्यकार की आत्मा निवास करती है।

**बीज शब्द:**-सुविख्यात-प्रसिद्ध, दासता-गुलामी, ख्याति-प्रसिद्धि, सृजन-सर्जना करना, अछूतोद्धार- अपृश्यों का उद्धार, स्त्री विमर्श-स्त्रियो की चर्चा।

**उद्देश्य:**-प्रेमचन्द जी का आविर्भाव एक ग्रामीण परिवार से थे। अत: कृषक जीवन के भोगे हुए यथार्थ को उन्होंने अपने साहित्य के पात्रों में उकेरा है। वे मानवतावादी, सुधारवादी गाँधी के सत्य से प्रभावित उनकी रामराज्य की कल्पना से प्रेरित, स्वामी दयानन्द की हिन्दी के प्रति आस्था और आजादी के विगुल से प्रभावित तथा राजाराम मोहन राय से प्रभावित साहित्य शिल्पी थी। इन तीनों महापुरुषों के व्यक्तित्व की छाप उनके हृदय में पड़ चुकी थी। महात्मा गाँधी की भांति वे भी 'राम राज्य की कामना करते हैं। उनकी कृतियों के माध्यम से जन-जन को यह अवगत कराना इस लेख का उद्देश्य है कि यथार्थ और आदर्श की स्थापना ही उनकी रचनाओं का उद्देश्य है।

**प्रस्तावना:-**

**डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार**-'' प्रेमचन्द शताब्दियों से पद-दलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे पर्दे में कैद और पद-पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीबो और बेकारो की महत्व को समझते थे।''

प्रेमचन्द जी के हिन्दी साहित्य में आगमन से कथा साहित्य को एक नया संसार मिला है, जिसमें भूतों-प्रेतों परियों, योगिनियों और राजा-रानी की कहानियॉ नहीं बल्कि व्यवस्था के विरूद्ध बगावत का विगुल फूँकने वाले शोषितों दलितो, मजदूरों तथा कृषकों जैसे अभिशप्त संतप्त श्रमजीवियो के कष्टों की करूणार्द कहानियाँ हैं। प्रेमचन्द जी का कथा साहित्य महात्मा गांधी, स्वामी दयानन्द एवं राजा-राम मोहन राय-इन तीनों विभूतियों की त्रिवेणी है। उक्त तीनों युग प्रवर्तकों के समन्वित दृष्टिकोणों को अपनी साहित्यिक कृतियों में प्रस्तुत करने के कारण ही वे युग- प्रतिनिधि कलाकार माने जाते हैं। समस्त राष्ट्रीय एवं सामाजिक आन्दोलन उनके साहित्य में मुखर है। इससे स्पष्ट है कि प्रेमचन्द के अकेले व्यक्तित्व में उनका सारा युग समाविष्ट है और निस्सन्देह उन्हें युग प्रतिनिधि व्यक्तित्व मिला है। उनकी साहित्यिक कृतियाँ जितनी तत्कालीन समाज में महत्वपूर्ण और प्रासंगिक थीं उतनी ही आज भी प्रासंगिक है और आगे भी रहेंगी।

**प्रेमचन्द का साहित्यिक परिचय:**-जैसा कि सर्वाविदित है कि उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द का जन्म एक गरीब घराने में काशी से चार मील दूर लमही नामक गांव में 31 जुलाई 1880 ई. को हुआ था। इनके पिता अजायब राय डाक मुंशी थे उन्हें 15-20 रूपए वेतन मिलता था गाँव में उनके पास थोड़ी सी कृषि भूमि थी। आर्थिक कठिनाइयों के कारण वह प्रेमचन्द को उचित पैसे भी न दे पाते थे। प्रेम चन्द जी ने 'जीवनसार' नामक आत्मकथा में लिखा है कि-''जब तक पिताजी जीवित रहे तब तक उन्होंने मेरे लिए बारह आने से अधिक का जूता कभी न खरीदा और चार आने गज से अधिक का कपड़ा नहीं खरीदा।''[1] आठ वर्ष की उम्र में माता का निधन हो गया। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। अत: बचपन से दरिद्रता, मातृहीनावस्था, सौतेली मां का दुर्व्यवहार के साथ पिता के स्नेह बिनाा ही व्यतीत हुआ। जब उनके पिता की बदली गोरखपुर हुई तो वे गोरखपुर के एक स्कूल में दाखिल कराए गए। उसी उम्र में उन्होंने उर्दू साहित्य का अध्ययन किया। तिलिस्मी होशरूबा नामक एक विशालकाय ग्रन्थ (उपन्यास) उन्होंने पढ़ डाला। अभी 15 वर्ष की ही हुए थे कि उनका विवाह हो गया, परन्तु विवाह पश्चात् 16 वर्ष की आयु के ही अभी थे कि पिता भी दुनिया से चल बसे। अब घर में रह गई विमाता उनके दो पुत्र, स्वयं प्रेमचन्द और उनकी पत्नी।

प्रेमचन्द को गढ़नेवाले यही प्रारम्भिक तत्व थे। विपरीत परिस्थितियों से वे घबराए नहीं। किसी तरह मैट्रिक पास कर ली। इण्टरमीडिएट पास करने के पश्चात् शहर में 5 रू. मासिक पर एक ट्यूशन

पढ़ाने लगे। जिसमें से 3 रू. घर भेजते और दो रू. अपने पास रख लेते। जहाँ ट्यूशन पढ़ाते थे उन्हीं के यहां अस्तबल के ऊपर बनी एक छोटी सी कोठरी में टाट बिछाकर मिट्टी के तेल के लैम्प से पढ़ते थे। एक बार खिचड़ी पकाकर खाते थे। संयोग से वहां सहकारी अध्यापक की नौकरी मिल गई वेतन 18रू. मासिक मिलने लगा और जीवन आगे चल पड़ा।

भोगे हुए दारूण दु:ख हृदय में लेकर साहित्य सृजन की ओर प्रवृत्त हुए। आरम्भ में 'नवाब राय' के नाम से उर्दू भाषा में कहानियॉ और उपन्यास लिखते थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'माधुरी' तथा 'मर्यादा' पत्रिकाओं का सम्पादन किया वे सच्चे अर्थो में 'कलम के सिपाही' हैं। प्रेमचन्द की पत्नी शिवरानी देवी ने जो पुस्तक 'प्रेमचन्द घर में लिखी तथा प्रेमचन्द की आत्मकथा 'जीवनसार' से यह तथ्य उद्घाटित होता है कि वे एक उदार, सहनशील संतोषी व्यक्ति ही नहीं थे उपितु निर्लिष्ट मानवीय पक्ष के अध्येता भी थे। इन्हीं गुणों के कारण एक साधारण घर के बालक होते हुए भी महान व्यक्तित्व बने।

**डॉ0 राम विलास शर्मा ने कहा है**-'' प्रेमचन्द को जो वास्तविक शिक्षा मिली वे शिक्षा विद्यालय दूसरे ही थे। उनके अध्यापक लमही के किसान, बनारस के महाजन और किताबों के नोट्स बिकनेवाले बुकसेलर थे। भले ही वे गणित पढ़ाने योग्य न रहे हों। वह हिन्दुस्तानी समाज का बीज गणित अच्छी तरह समझ गए थे और उपन्यासों में बहुत प्रश्नों के हल करने की तैयारी में थे।''[2]

**एक महत्वपूर्ण उपन्यासकार: प्रेमचन्द:**-भोगे हुए दारूण दु:ख हृदय में लेकर साहित्य सृजन की ओर प्रवृत्त हुए। आरम्भ में 'नवाब राय' के नाम से उर्दू भाषा में कहानियाँ और उपन्यास लिखते थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'माधुरी' तथा 'मर्यादा' पत्रिका ओ का सम्पादन किया। वे सच्चे अर्थों में कलम के सिपाही थे। भारत के राजनैतिक, सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रेमचन्द जी ने जिस प्रकार जनता के मस्तिष्क पर उकेरा था वह अद्भुत है। उनके उपन्यासों में आदर्शोन्मुख यथार्थ के द्वारा जीवन संघर्ष और चेतना जगत का सुन्दर समन्वय हुआ है। उनका 'गोदान' भारत के समाज का यथार्थ और सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करने वाला महाकाव्य है। प्रेमचन्द के महत्व के व्यक्त करते हुए कहा गया है- ''गोदान के रचयिता प्रेमचन्द जी हिन्दी के वर्तमान और भविष्य के निर्देशक हैं। प्रेमचन्द उस शिखर के समान हैं जिसके दोनों ओर पर्वत के दोनों भागों के उतार चढ़ाव है।''[3]

**उपन्यास किसे कहते हैं?**

उपन्यास शब्द अंग्रेजी के नावेले का पर्यायवाची है। नॉवेल का अर्थ है नया। फ्रांस में नोवास शब्द का प्रयोग होता था जिसका तात्पर्य यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने वाली कथा है। इटली में इसको नॉवेल शब्द दिया गया है। उपन्यास को फिक्शन भी कहते हैं जिसका अर्थ गल्प माना जाता है, जो जीवन की रंगीनियों से युक्त यथार्थ से सम्बद्ध होता है। कुछ लोग इसे रोमांस भी कहते हैं। इस विषय में क्लारारीव कहते हैं-

''उपन्यास अपने युग का चित्रण करता है। रोमांस उदान्त भाषा में उसका वर्णन करता है, जो न घटित है न घटायमान। उपन्यास दैनिक जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का वर्णन करता है जिनका हमारे या हमारे मित्र के जीवन में घटित होना सम्भव है।''[4]

उपन्यास दो शब्दों से मिलकर बना है- उप+न्यास = उप का अर्थ है 'सामने', न्यास का अर्थ है- स्थापना अर्थात् विषय की स्थापना करना उपन्यास है। उपन्यास जीवन की गुत्थियों तथा आन्तरिक ग्रन्थियों को स्पष्ट रूप से पाठकों के समक्ष बोल देता है। प्रेमचन्द उपन्यास को मानव चित्रण का चित्र मानते है। यथा ' मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके मूल रहस्यों को खोलना ही उपन्यास है।''[5]

आइए प्रगतिशील साहित्य संघ के संस्थापक, लेखक, मानवीय भावनाओं के अध्येता अपने लेखन क्षेत्र के एक मात्र सम्राट पुरुष मुंशी प्रेमचन्द की रचनाओं का अवलोकन करते हैं।

**1. सेवासदन**- प्रेमचन्द जी ने यह उपन्यास महावीर प्रसाद पोद्दार की प्रेरणा से लिखी। यह मुंशी जी का तीसरा उपन्यास है। जिसे गोरखपुर में 1916 ई. में प्रकाशित किया गया सेवा सदन का उर्दू रूप 'बाजार हुस्न' नाम से 1911 ई. के मध्य में दो किश्तों में प्रकाशित किया गया। इस उपन्यास में स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक घटनाओं की अधिकता है। इसमें लगभग 56 पात्र हैं, जिनमें 39 पुरुष और 17 स्त्री पात्र है। इस उपन्यास में उन्होंने तत्कालीन धार्मिक, आर्थिक समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया है। उन्होंने समाज में फैली दहेज प्रथा, अनमेल विवाह और वैश्या प्रथा को कथा क्षेत्र का प्रमुख आधार बनाया है। यह कथा सुमन नामक महिला पात्र की है। जिस तरह उन्होंने सुमन को वैश्यागृह भेजा है। वह कुछ अस्वाभाविक होते हुए भी इसलिए नहीं अखरता क्योंकि आगे उन्हें वैश्याओं की समस्याओं का समाधान सुझाना है। कथा में यह विट्ठलदास और पद्मसिंह के आदर्श वैश्या सुधार की भावना की प्रतिरूप बनकर उभरी है। इस कथा में महाजनी प्रथा और ग्रामीण जीवन का चित्र भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

**2. प्रेमाश्रम**- यद्यपि इस उपन्यास का रचनाकाल 1918ई. है किन्तु इसका प्रकाशन वर्ष 1922ई. कोलकाता में हुआ। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा ज्ञानशंकर और प्रेमशंकर नामक दो बिन्दुओं से संचालित होती है। प्रेमशंकर अपने भाई से भिन्न उदारमना और राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े व्यक्ति हैं गाँधीवादी विचारधारा का उनपर पूर्ण प्रभाव है। इस उपन्यास में पात्रों की संख्या 80 के लगभग है। प्रेमचन्द ने पात्रों की मुद्रा, मन: स्थिति, मन के रहस्यों, पात्र के स्वभाव, विचारधारा आदि में परिवर्तन को भी अपने शब्दों में प्रकट किया है। प्रेमाश्रम के पात्रों के संवादो में देशकाल और चरित्रचित्रण की वृत्ति आद्योपान्त देखने को मिलती है। इसकी भाषा में अंग्रेजी के लगभग 200 शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस उपन्यास में जमींदारी और अफ्सरसाही के नीचे पिसते हुए गरीब किसानों की दशा पर अच्छा प्रकाश डाला है। इस कथा में नगर के शिक्षित वर्ग भी समस्या से असंपृक्त नहीं हैं। जमींदारी प्रथा को शोषण का मूल कारण माना गया है। ज्ञानशंकर एक क्रूर जमींदार का प्रतिनिधि है। इस उपन्यास में उन्होंने कृषकों की जागृति और विद्रोहात्मक स्वर को भी दर्शाया है। यहां वह इस आन्दोलन को फ्रांस की क्रांति के सहारे उठाते है। शायद यही कारण है कि साम्यवादियों न साम्यवाद का समर्थक तथा मान्यता देनेवाला मानकर उनका इसी रूप में प्रचार किया। उन्होंने दरोगा, चपरासी, तहसीलदार आदि छोटे-बड़े अफ्सरों को झूठे मुकदमें बनाकर व्यक्तियों को फँसानेवाला, रिश्वत लेनेवाला और प्रजापीड़न करनेवाला बताया है। यहाँ तक कि डॉ. श्री जन शोषक है।

**3. रंगभूमि**:-रंगभूमि का प्रकाशन 1924-25 ई. में हुई। यह प्रेमचन्द का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में उन्होंनें स्वतंत्रता आंदोलन की झलक दिखाई है। रंग भूमि प्रेमचन्द का सबसे बड़े आकारवाला उपन्यास है। इसका वर्तमान उपलब्ध संस्करण दो खण्डों में प्रकाशित है। उपन्यास के शीर्षक रंगभूमि के द्वारा उपन्यासकार इसकी प्रमुख कथा को रेखांकित करना चाहता है। यह कथा है पाण्डेपुर ग्राम के निवासी अंधे भिखारी सूरदास द्वारा

खाली पड़ी चारागाह के काम आनेवाली पैतृक जमीन को पूंजीपति जानसेवक के चंगुल से बचाने के अवरत संघर्ष और असफलता की। उस जमीन पर सिगरेट बनाने का कारखाना बन जाने पर गाँव के मकानों की जमीन की नारी आती है। सूरदास पुनः संघर्ष छेड़ता है और मारा जाता है। रंग भूमि के सूरदास का महत्व इस बात में नहीं है कि वह व्यवस्था के लिए संघर्ष करता है, वरन इस बात में है कि वह अन्याय न सहकर उसका सक्रिय विरोध करता है। एक निर्बल व्यक्ति में उपन्यास के प्रतिरोध की शक्ति देकर प्रेमचन्द जी ने भारत के किसान जैसे निर्बल व्यक्तित्व एक बल और प्रेरक शक्ति दी है। प्रेमचन्द जी ने अंग्रेजो के साम्राज्यवादी नीति को भी इस कथा में स्थान दिया है। वे तत्कालीन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को इसी जागृति का संदेश देते हैं कि '' साम्राज्यवादी शासन शोषण और आतंक के आधार पर कायम है।''

**4. कायाकल्प**:-कायाकल्प उपन्यास का प्रकाशन 1930ई. में हुआ। यह मुंशी प्रेमचन्द का प्रथम उपन्यास है। जिसकी पाण्डुलिपि हिन्दी में प्राप्त होती है। कायाकल्प उपन्यास में 6 परिवारों की कथा है, जिसमें यशोदानन्दन और ख्वाजा महमूद के परिवारों को छोड़कर शेष चार परिवारों का मुख्य कथा से सीधा सम्बन्ध है। उपन्यास में मुख्य कथा चन्द्रधर की है जो अद्योपान्त चलती है। उपन्यास में लगभग 15 प्रमुख पात्र हैं। इसमें रानी देवप्रिया। यौगिक और वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा दो बार पुनः यौवन प्राप्त करती है। हंसराज रहवर कायाकल्प के विषय में कहते हैं- ''प्रेमाश्रम में प्रेमचन्द यथार्थ के मार्ग पर जितना बढ़े थे 'कायाकल्प' में उतना ही पीछे लौट गए मालूम होते है।''[6]

इस उपन्यास में लेखक विधर्मियों के चंगुल में पड़ जाने वाली स्त्रियों की दशा और रूढ़िवाद के दृष्टिकोण के सुधार के लिए प्रेमचन्द के चक्रधर जैसे आदर्शवादी चरित्र प्रस्तुत किए है'।

**5. प्रतिज्ञा**- जनवरी 1927 में प्रतिज्ञा उपन्यास का धारावाहिक रूप से चाँद पत्रिका में प्रकाशन हुआ। प्रतिज्ञा एक समस्या प्रधान कहानी है। विधवाओं की समस्या इसका मुख्य विषय है। इसके अन्तर्गत प्रेमा और पूर्णा की कथाएँ आती है। प्रेमा और पूर्णा की कथा को अनुस्यूत करने के लिए प्रेमचन्द ने जिस कौशल का परिचय दिया है वह अद्भुत है। आदर्शवादी विचारधारा होने के कारण उन्होंने इसमें आदर्शात्मक प्रस्तुतिकरण किया है। यह वह काल था जब आर्यसमाज और स्वामीदयानन्द ने विधवाओं का समर्थन किया। आर्यसमाज का पूर्ण प्रभाव मुंशी प्रेमचन्द पर दृष्टिगोचर होता है।

**6. निर्मला**- इस उपन्यास का प्रणयन 1923ई. में हुआ। यह लखनऊ से प्रकाशित हुआ। निर्मला में मध्यवर्गीय समाज का चित्रण है। नारी भावनाओं, समस्याओं प्रवंचनाओं का उन्होंने मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में अनमेल विवाह और दहेज प्रथा को उजागर किया गया है। इस उपन्यास में कमलाचरण, प्रताप और माधवी ऐसे पात्र हैं तो भारतीय नारी के आदर्श पतिव्रत परम्परा को अधिक महत्व देते हैं।

**7. गबन**:- गबन उपन्यास का प्रकाशन 1930ई. में हुआ। इसमें मध्यवर्गीय समाज की नारी के सामाजिक आर्थिक स्थिति पर दृष्टिपात किया गया है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने पुलिस विभाग की कार्य प्रणाली पर प्रहार करते हुए निर्भीकता से पर्दाफाश किया है। इसमें मध्यवर्गीय रमानाथ का झूठा दिखावा और जालपा की आभूषण प्रियता का वर्णन है। आभूषण प्रियता की प्रवृत्ति किस प्रकार समाज के लिए बुरी है उसी का वर्णन उन्हीं के शब्दों में अंकित है-

''बुरा मरज है, बहुत ही बुरा। वह धन जो भोजन में खर्च होना चाहिए बाल-बच्चों का पेट काटकर गहनों की भेंट दिया जाता है।''[7]

आभूषण प्रियता के कारण और दिखावे की लालसा के कारण जालपा और रमानाथ को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। रमानाथ ने भी आभूषणों के लिए चोरी रूपयोंम की चोरी तक कर डाली। और पुलिस के चंगुल में फंसा दिया।

**8. कर्मभूमि**:- कर्मभूमि का प्रणयन गाँधी जी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन और उत्तर प्रदेश के किसनों के लगानबंदी आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर हुआ है। इसका प्रकाशन सन् 1932 ई. में हुआ। कर्मभूमि की रचना से पूर्व ही 1928ई. में वारदोली के किसानों का आन्दोलन सफलतापूर्वक समाप्त हुआ था। उपन्यास पर इसका भी प्रभाव पड़ा है। युगीन यथार्थ के वस्तुवादी चित्रण और उसके सीधे उद्घाटन का प्रयास इस उपन्यास को महत्वपूर्ण बना देता है। इस उपन्यास में आर्थिक विषमता के प्रतिपादन के साथ ही पारिवारिक समस्या, पतित स्त्रियों की समस्या तथा अस्पृश्यता की समस्या को दर्शाया गया है। कर्मभूमि उपन्यास में धार्मिक पाखण्ड पर भी कुठाराधात किया गया है। शिक्षण संस्थाओं की अर्थनीति का भी यथार्थ चित्रण है। जनहित की दृष्टि से इस उपन्यास में म्यूनिसिपैलिटी जैसी संस्थाएँ भी समर्थन और सम्पन्न व्यक्ति के स्वार्थी को अग्रसर करने का साधन बन गई है यह दर्शाया गया है। इसमें यह भी बताया गया है कि पिता द्वारा पुत्र को और पति द्वारा पत्नी को अपने अधीन रखने के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

**9. गोदान**:- गोदान में कृषक जीवन का यथार्थ और बड़ा ही मार्मिक वर्णन मिलता है। यह भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य कहा जा सकता है। इसमें नगर और ग्रामीण जीवन की समस्याओं का विवेचन हुआ है। एक और पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित भारत की नागरिक संस्कृति आन्दोलित हो रही थी, दूसरी और ग्रामीण संस्कृति जो भारत की सांस्कृति निधि की तरह गाँवों में आश्रय लिए हुए थी। मध्यवर्गीय समाज भी पाश्चात्य संस्कृति के प्रति उत्कण्ठित होकर ललचायमान था। इस उपन्यास में किसानों की ऋण समस्या को केन्द्र में रखा गया है।

इस उपन्यास का महत्वपूर्ण और मुख्य पात्र होरी है जो समस्त भारतीय कृषक वर्ग का प्रतिनिधि है। आरम्भ में होरी की अपने घर में गाय रखने की तीव्र इच्छा होती है। वह किसी तरह गाय लेकर आता है किन्तु उसे रखने में वह असमर्थ हो जाता है। उसे अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है अन्त में वह मर जाता है, जब वह मरता है परिवार के पास न गाय होती है, न पैसा। उसकी पत्नी धनिया बीस आने का गोदान करती है। अपनी छवि को किसानों की बेगार से चमकाने वाले राय साहब का भी ढोंग सबको नजर आता है। वह कभी राष्ट्रवादी होने का ढोंग करते हैं कभी राजभक्त बनकर उल्लू सीधा करते हैं। पूँजीवादी शोषण का भी चित्रण बड़ी गम्भीरता पूर्वक किया गया है। शहर का पूँजीपति गाँव में महाजनी करता है। गाँव में उसके एजेन्ट भी काम करते हैं। मजदूरों की मामूली मजदूरी भी पूरी नहीं मिलती है, उनकी पुलिस से मिली भगत है। मजदूरों का शोषण, अनाचार, अत्याचार उनका शौक है। गाँवों के पंचों ने भी कृषकों को दबाने कुचलने का कोई मौका नहीं छोड़ा है। होरी का पुत्र गोबर अहीर की कन्या से विवाह कर लाया इससे समाज की नाक कट गई और बिरादरी की मौत हो गई। झिंगुरी सिंह पचास साल के हैं दो पत्नियाँ रखे हैं। पर उन्हें कोई नही पूछता। पैसेवाले हैं उच्चकुल के हैं, परन्तु होरी को सौ रूपए नकद और तीन मन अनाज का दण्ड लगाकर लूट लेते हैं। गाँवो में अशिक्षा के कारण किसानों में अन्धविश्वास, छुआछूत, जाति-पाति, विधवा की विडम्बना, सास-बहू, ननद-भौजाई, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, देवरानी-जेठानी के पारिवारिक झगड़े आदि

बुराई पाई जाती है। प्रेमचन्द जी का उद्देश्य इन सबबुराइयों के प्रति हमारी घृणा जगाकर समाज की इस कुरुपता को बदलने की प्रेरणा देता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मुंशी प्रेमचन्द के सम्बन्ध में वक्तव्य दृष्टव्य है– 'प्रेमचन्द शताब्दियों से पद–दलित, अपमानित, निरपेक्षित कृषकों की आवाज थे पर्दे में कैद, पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीबों और बेबसों के प्रचारक थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार विचार, रहन–सहन आशा–आकांक्षा, दुख–सुख व सूझ–बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।

**10. मंगल सूत्र**:– मंगलसूत्र प्रेमचन्द जी का अन्तिम उपन्यास है। यह उपन्यास अपूर्ण है। मंगलसूत्र वर्तमान सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के प्रति उपन्यासकार का बढ़ता असंतोष व्यक्त करता है। इसमें नारी समस्या का चित्रण केन्द्र बिन्दु है।

**11. मंगलाचरण**– कुछ अनुपलब्ध प्रारम्भिक उपन्यास मंगलाचरण शीर्षक से प्रकाशित हुए मंगलाचरण में उनके चार प्रारम्भिक उपन्यास 'असरारे मआविद' उर्फदेवस्थान रहस्य', हम खुर्मा, हमअवसाद, प्रेमी तथा रूठी रानी संकलित है। असरारे मआविद और रूठी रानी दोनों ही उर्दू पत्रिका में छपे थे। असरारे मआविद उनका सबसे पुराना उपन्यास हैं और प्रेमा हिन्दी में प्रकाशित होने वाला प्रथम उपन्यास है। यह बाबू नबावराय बनारसी नाम से प्रकाशित हुआ था।

**12. किशना (कृष्णा)**– इसका प्रकाशन 1908ई. में बनारस में हुआ। रूठी रानी का प्रकाशन उर्दू साप्ताहिक जमाना में अप्रैल 1907ई. में प्रकाशित हुआ। वरदान का प्रकाशन 1905ई. में हुआ। इसके शिल्प विधान के अवलोकपरान्त यह एक साधारण कथाकार का असाधारण उपन्यास है।

अन्ततः प्रेमचन्द के उपन्यासों के अध्ययनोंपरान्त यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने जन–जीवन की समस्याओं को गहन अध्ययन किया था उनके चित्रण का चित्रपट बहुत विशाल था। यह बात उनकी कहानियों और उपन्यासों के समग्र कलेवर को पढ़ने से मालूम होती है और वह सभी को आदर्श बनाना चाहते थे। उनका जीवन दम्भ–रहित था। उन्हे राष्ट्र से प्रेम था। नारियों के उत्थान महाजनी का दोष, अछूतों का उद्धार समग्र दृष्टिकोण उनकी लेखनी में समाहित हैं। वे एक सच्चे उपन्यासकार है।

**सन्दर्भ सूची**:–


1. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाश,17–ए, प्रभूनगर, प्रताप नगर के पास आगरा–282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ. 26
2. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन 17–ए, प्रभू नगर, प्रताप नगर के पास आगरा–282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ.28
3. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन 17ए, प्रभू नगर, प्रताप नगर के पास आगरा–282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ. 18
4. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन 17ए, प्रभू नगर, प्रताप नगर के पास आगरा–282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ. 5
5. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन 17ए, प्रभू नगर, प्रताप नगर के पास आगरा–282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ. 6
6. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन 17ए, प्रभू नगर, प्रताप नगर के पास आगरा–282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ. 50
7. मुंशी प्रेमचन्द, मुंशी प्रेमचन्द एवं उनका उपन्यास गवन समीक्षा एवं व्याख्या, हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन 17ए, प्रभू नगर, प्रताप नगर के पास आगरा–282010 (उ.प्र.), नवीन संस्करण, पृ. 51

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# वर्तमान भारतीय संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक अपराधीकरण का परिदृश्य

**मुकुल कुमार सिंह**

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

**शोध सार**:-वर्तमान भारतीय संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक अपराधीकरण एक ज्वलंत और गंभीर चिंता का विषय बन चुका है। सुशासन की अवधारणा को कमजोर बनाने में भारत की राजनीति में अपराधीकरण का बढ़ना सत्ता के दुरुपयोग से सीधे जुड़ा हुआ है। 2024 के आम चुनाव में यह स्पष्ट देखा गया कि राजनीतिक अपराधीकरण का प्रभाव बढ़ा है। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स ने अपने विश्लेषण में दावा किया है कि वर्तमान लोकसभा के 543 निर्वाचित सदस्यों में से 251 यानी 46 प्रतिशत के खिलाफ क्रिमिनल केस दर्ज हैं। राजनीतिक अपराधीकरण का खतरा समाज हेतु एक बड़ी समस्या बन गया है जो लोकतन्त्र के बुनियादी सिद्धांतों को प्रभावित कर रहा है। जिससे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की सुचिता, चुनावों में निष्पक्षता, कानून का पालन, नैतिकता एवं जवाबदेही का प्रश्न खड़ा होता है। राजनीतिक भ्रष्टाचार और सत्ता के दुरुपयोग की प्रभावी ढंग से जांच करने तथा मुकदमा चलाने के लिए भ्रष्टाचार विरोधी एजेंसियों एवं न्यायपालिका को सशक्त बनाना, चुनाव आयोग जैसे निरीक्षण निकायों की स्वतंत्रता एवं प्रभावशीलता सुनिश्चित करना, स्वतंत्र मीडिया पर बल देना ही संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक अपराधीकरण को कम कर सकता है।

**मुख्य शब्द**:-लोकतंत्र, राजनीतिक अपराधीकरण, सुशासन, सत्ता, राजनीतिक भ्रष्टाचार।

**प्रस्तावना**:-भारतीय संसदीय लोकतंत्र विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में अनेक चुनौतियों और समस्याओं का सामना करता है। इनमें से एक गंभीर और व्यापक समस्या है राजनीतिक अपराधीकरण। इसका अर्थ है राजनीति में अपराधी तत्वों का प्रवेश और सत्ता में उनकी भागीदारी। यह प्रवृत्ति न केवल भारतीय लोकतंत्र के मूल्यों और आदर्शों को कमजोर करती है बल्कि समाज में भ्रष्टाचार, कानून की अवमानना और सामाजिक असमानता को भी बढ़ावा देती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना और विकास का कार्य प्रारंभ हुआ। इस दौरान कुछेक दशकों तक राजनीतिक शुचिता और आदर्शों का पालन किया गया लेकिन जैसे-जैसे राजनीति में धनबल और बाहुबल का प्रभाव बढ़ा वैसे-वैसे आपराधिक प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों का राजनीति में प्रवेश होना शुरू हो गया। यह समस्या धीरे-धीरे इतनी गंभीर हो गई कि यह अब भारतीय राजनीति का एक अभिन्न हिस्सा बन चुकी है। राजनीतिक दल जिनका मुख्य उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना होता है वे अक्सर चुनाव जीतने के लिए आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों का चयन करते हैं। ऐसे उम्मीदवार धनबल और बाहुबल के आधार पर चुनाव जीतने की क्षमता रखते हैं जिससे राजनीतिक दलों को तात्कालिक लाभ मिलता है। किन्तु दीर्घकालिक दृष्टिकोण से यह प्रवृत्ति लोकतंत्र की नींव को कमजोर करती है और विधायी प्रक्रिया की पवित्रता को दूषित करती है। भारतीय राजनीति में अपराधियों का प्रवेश और राजनीतिक अपराधीकरण का विकास एक लंबी और जटिल प्रक्रिया का परिणाम है। इस प्रवृत्ति की जड़ें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के बाद के वर्षों में पाई जा सकती हैं जब भारतीय लोकतंत्र ने अपनी प्रारंभिक अवस्था में कदम रखा।

**स्वतंत्रता के बाद का दौर**:-1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान ने लोकतांत्रिक शासन की स्थापना की जिसका उद्देश्य लोक चुनावों के माध्यम से जनता के प्रतिनिधियों का चयन था। प्रारंभिक वर्षों में राजनीति में नैतिकता और आदर्शों को उच्च स्थान था। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल ने लोक हित में अपनी नैतिक मूल्यों को प्रस्तुत किया। हालांकि 1960 और 1970 के दशक में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के कारण राजनीति में धनबल और बाहुबल का प्रभाव बढ़ा। राज्य स्तर पर जातीय और सांप्रदायिक आधार पर दलों ने चुनावी प्रक्रिया में आपराधियों को प्रवेश दिया। बिहार और उत्तर प्रदेश में अपराधियों ने राजनीति में प्रभाव बढ़ाया और अपराधी लोगों ने चुनाव जीतकर शासन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। 1980 के दशक में यह धार्मिक और सामाजिक समुदायों के बीच आंदोलन का आधार बन चुकी। 1990 के दशक में अपराधियों का राजनीति में प्रवेश एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना थी। अपराधियों का यह प्रवेश राष्ट्रीय स्तर पर भी फैल चुका था। मंडल आयोग की सिफारिशों और सामाजिक आंदोलनों ने इस स्थिति को और बढ़ावा दिया। विभिन्न दलों ने प्रभावशाली व्यक्तियों को स्वामित्व दिया जिनकी छवि आपराधिक थी और राजनीति में यह प्रयोग बढ़ता ही गया।

आज के समय में राजनीतिक अपराधीकरण भारतीय लोकतंत्र की एक जटिल और गंभीर समस्या बन चुका है। 21वीं सदी में भी चुनावी प्रक्रिया में बाहुबल और धनबल का प्रभाव बना हुआ है। राजनीतिक दल अभी भी आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों को टिकट देते हैं और ऐसे कई व्यक्ति संसद और विधानसभाओं में महत्वपूर्ण पदों पर काबिज हैं। भारत के चुनाव आयोग और न्यायपालिका ने इस समस्या से निपटने के लिए कुछ कदम उठाए हैं। जैसे कि आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों के लिए अपने रिकॉर्ड की घोषणा करना अनिवार्य करना। हालांकि राजनीतिक अपराधीकरण की जड़ें इतनी गहरी हैं कि इसे पूरी तरह से समाप्त करना अब भी एक बड़ी चुनौती बना हुआ है।

**राजनीतिक अपराधीकरण के कारण**:-भारतीय राजनीति में अपराधीकरण की समस्या का उद्भव और विस्तार कई जटिल सामाजिक,

आर्थिक और राजनीतिक कारकों का परिणाम है। इन कारकों ने मिलकर एक ऐसा माहौल तैयार किया जिसमें आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों के लिए राजनीति में प्रवेश और सत्ता का हिस्सा बनना संभव हो गया। नीचे राजनीतिक अपराधीकरण के प्रमुख कारणों का विश्लेषण प्रस्तुत है:

**1. राजनीतिक संरक्षण और समर्थन:**–राजनीतिक दलों द्वारा अपराधियों को दिए जाने वाले संरक्षण ने राजनीतिक अपराधीकरण को बढ़ावा दिया है। राजनीति में अपराधियों का प्रवेश अक्सर राजनीतिक दलों की ओर से मिलता है जो अपने चुनावी लाभ के लिए इनका उपयोग करते हैं। ऐसे अपराधी नेता अपने बाहुबल और धनबल के जरिए चुनावों में जीत हासिल करते हैं और बदले में राजनीतिक दल उन्हें संरक्षण प्रदान करते हैं। यह एक प्रकार की परस्पर लाभकारी व्यवस्था बन जाती है। जब राजनीतिक और प्रशासनिक संस्थाएं भ्रष्ट हो जाती हैं तो वे अपराधियों को कानूनी प्रक्रिया से बचाने और राजनीति में प्रवेश करने में मदद करती हैं।

**2. चुनावी प्रणाली में खामियां:**–भारतीय चुनाव प्रणाली में कुछ ऐसी खामियां हैं जो अपराधियों को राजनीति में प्रवेश करने का अवसर प्रदान करती हैं। चुनावों में जीतने के लिए धनबल, बाहुबल और प्रभावशाली नेटवर्क की आवश्यकता होती है। आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों के पास अक्सर यह सब कुछ होता है और वे चुनाव जीतने के लिए इन संसाधनों का प्रयोग करते हैं। इसके अलावा चुनावी प्रणाली में पारदर्शिता की कमी और राजनीतिक दलों द्वारा उम्मीदवारों के चयन में आपराधिक रिकॉर्ड की अनदेखी भी इस समस्या को और बढ़ावा देती है।

**3. कानूनों की कमजोरी और निष्प्रभावी कार्यान्वयन:**–वर्तमान कानून और उनका कार्यान्वयन इस दिशा में काफी कमजोर साबित हुआ है। भारत में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए कड़े नियम और कानून हैं लेकिन इनका कार्यान्वयन प्रभावी ढंग से नहीं हो पाता। इसके अलावा कानून की प्रक्रियाएं धीमी होती हैं जिससे आपराधिक मामलों का निपटारा होने में वर्षों लग जाते हैं और इस बीच अपराधी चुनाव लड़ते रहते हैं। कई बार राजनीतिक दबाव के कारण पुलिस और न्यायपालिका निष्क्रिय हो जाती हैं और अपराधी नेताओं के खिलाफ सख्त कार्रवाई नहीं कर पाती।

**4. सामाजिक और आर्थिक कारक:**–भारत की सामाजिक संरचना जिसमें जाति, धर्म, सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और आर्थिक असमानता महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जो राजनीतिक अपराधीकरण को बढ़ावा देती है। गरीबी और बेरोजगारी जैसी समस्याए नेताओं को चुनावी राजनीति में मदद करते हैं क्योंकि आश्वासन देकर वंचित समुदायों को अपने पक्ष में कर लेते हैं

**5. राजनीतिक दलों की चुनावी रणनीतियां:**–चुनाव जीतने के लिए राजनीतिक दलों द्वारा अपनाई गई रणनीतियां भी राजनीतिक अपराधीकरण का एक प्रमुख कारण हैं। अक्सर राजनीतिक दल ऐसे उम्मीदवारों को मैदान में उतारते हैं जिनकी आपराधिक पृष्ठभूमि होती है और जो जातीय या धार्मिक आधार पर मजबूत समर्थन प्राप्त करते हैं।

**6. जनता की उदासीनता और असहायता:**–कई बार जनता की उदासीनता और राजनीतिक अपराधीकरण के प्रति असहायता भी इस समस्या को बढ़ावा देती है। जब जनता इस बात को स्वीकार कर लेती है कि आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेता ही उन्हें सुरक्षा और सुविधाएं प्रदान कर सकते हैं तो वे ऐसे नेताओं का समर्थन करने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

**राजनीतिक अपराधीकरण के प्रभाव:**–राजनीतिक अपराधीकरण का भारतीय लोकतंत्र, समाज और विधायी प्रक्रियाओं पर व्यापक और गंभीर प्रभाव पड़ा है। यह प्रवृत्ति न केवल राजनीतिक प्रणाली को कमजोर करती है बल्कि देश की समग्र प्रगति और सामाजिक न्याय पर भी नकारात्मक असर डालती है। नीचे राजनीतिक अपराधीकरण के प्रमुख प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

**1. विधायी प्रक्रिया की गुणवत्ता में गिरावट:**–राजनीतिक अपराधीकरण का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव विधायी प्रक्रिया पर पड़ता है। जब आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति संसद और विधानसभाओं में प्रवेश करते हैं तो कानून निर्माण की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ऐसे नेता अक्सर अपने निजी स्वार्थों को प्राथमिकता देते हैं और कानूनों का दुरुपयोग कर सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप समाज के हितों की उपेक्षा होती है और केवल एक विशिष्ट वर्ग या समूह को लाभ पहुँचाने वाले कानून पारित किए जाते हैं।

**2. लोकतांत्रिक मूल्यों का ह्रास:**–लोकतंत्र की आधारशिला है कानून का शासन और नैतिकता पर आधारित राजनीति। जब राजनीति में आपराधिक तत्व शामिल होते हैं, तो लोकतांत्रिक मूल्यों का ह्रास होने लगता है। जनता का लोकतांत्रिक संस्थानों और प्रतिनिधियों पर विश्वास कम होने लगता है क्योंकि वे देखते हैं कि आपराधिक प्रवृत्ति वाले लोग सत्ता में हैं। यह स्थिति समाज में राजनीतिक निराशा और अस्थिरता को जन्म देती है।

**3. अपराध और भ्रष्टाचार में वृद्धि:**–जब आपराधिक प्रवृत्ति वाले नेता सत्ता में आते हैं, तो वे अपने आपराधिक नेटवर्क का विस्तार करते हैं और सरकारी संसाधनों का दुरुपयोग करते हैं। इससे न केवल अपराध दर बढ़ती है, बल्कि भ्रष्टाचार भी संस्थागत स्तर पर फैलता है। ऐसे नेता अपने प्रभाव का उपयोग करके न्यायिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप करते हैं और अपने खिलाफ मामलों को दबाने का प्रयास करते हैं। आपराधिक प्रवृत्ति वाले नेता अक्सर न्यायपालिका और पुलिस तंत्र पर अपने प्रभाव का उपयोग करते हैं, जिससे निष्पक्षता और पारदर्शिता को खतरा होता है।

**4. आर्थिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव:**–अपराधियों द्वारा नियंत्रित क्षेत्रों में निवेश की कमी होती है क्योंकि वहां कानून-व्यवस्था की स्थिति खराब होती है। इसके अलावा भ्रष्टाचार के कारण सरकारी योजनाओं का सही ढंग से कार्यान्वयन नहीं हो पाता जिससे आर्थिक विकास की गति धीमी हो जाती है। सरकारी ठेकों और परियोजनाओं में घोटाले बढ़ जाते हैं जिससे सार्वजनिक धन का दुरुपयोग होता है और विकास कार्यों में बाधा आती है।

**5. सामाजिक न्याय और समानता में बाधा:**–राजनीतिक अपराधीकरण सामाजिक न्याय और समानता के लक्ष्यों को भी कमजोर करता है। जब आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेता सत्ता में होते हैं तो वे समाज के कमजोर और वंचित वर्गों के अधिकारों का हनन कर सकते हैं। ये नेता जातीय, धार्मिक और क्षेत्रीय आधार पर समाज को विभाजित करते हैं और अपने प्रभाव को बनाए रखने के लिए हिंसा और धमकी का सहारा लेते हैं।

**6. नैतिकता और राजनीतिक संस्कृति में गिरावट:**–राजनीतिक अपराधीकरण ने भारतीय राजनीति की नैतिकता और संस्कृति में भी गिरावट लाई है। राजनीति जो कभी सेवा और समर्पण का माध्यम मानी जाती थी अब सत्ता और धन के लालच का प्रतीक बन गई है। इससे समाज में नैतिकता का ह्रास होता है और युवा पीढ़ी के लिए गलत उदाहरण प्रस्तुत होता है।

**7. जनता की राजनीतिक सहभागिता में कमी:**–राजनीतिक

अपराधीकरण के कारण जनता की राजनीति में सहभागिता और विश्वास में कमी आ जाती है। लोग यह मानने लगते हैं कि राजनीति केवल बाहुबल, धनबल और अपराध का खेल है जिसमें उनके जैसे सामान्य नागरिकों के लिए कोई जगह नहीं है। इससे मतदान में कमी और राजनीतिक उदासीनता बढ़ जाती है जो लोकतंत्र के लिए हानिकारक है।

**8. समाज में हिंसा और अस्थिरता**:-आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेताओं के सत्ता में आने से समाज में हिंसा और अस्थिरता का माहौल बनता है। ये नेता अपने विरोधियों को डराने और चुप कराने के लिए हिंसा का सहारा लेते हैं। इसके अलावा इनकी वजह से स्थानीय स्तर पर आपराधिक गतिविधियों में वृद्धि होती है जिससे समाज में असुरक्षा और अस्थिरता का वातावरण पैदा होता है।

**कानूनी संस्थाएं और प्रतिक्रियाएं**:-भारतीय राजनीतिक प्रणाली में अपराधीकरण के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए विभिन्न कानूनी संस्थाओं और संगठनों ने समय-समय पर महत्वपूर्ण पहल की हैं। इन कानूनी संस्थाओं की प्रतिक्रियाओं का उद्देश्य राजनीति में शुचिता बनाए रखना, लोकतंत्र की पवित्रता की रक्षा करना और आपराधिक तत्वों को राजनीति से दूर रखना है। इस खंड में हम प्रमुख कानूनी संस्थाओं और उनकी प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करेंगे:

**1. भारतीय चुनाव आयोग**:-भारतीय चुनाव आयोग एक स्वतंत्र संवैधानिक संस्था है जिसका मुख्य कार्य देश में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करना है। राजनीतिक अपराधीकरण के खिलाफ चुनाव आयोग ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं:

सर्वाच्च न्यायलय के 2002 (भारत सरकार बनाम एडीआर वाद) के ऐतिहासिक फैसले के बाद आपराधिक रिकॉर्ड का खुलासा चुनाव आयोग ने 2003 में सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बाद उम्मीदवारों के लिए अपने आपराधिक रिकॉर्ड का खुलासा करना अनिवार्य कर दिया। अब उम्मीदवारों को नामांकन के समय अपने खिलाफलंबित आपराधिक मामलों की जानकारी देनी होती है। इस कदम का उद्देश्य मतदाताओं को यह जानकारी देना है कि वे किस प्रकार के उम्मीदवार को वोट दे रहे हैं।

**अनिवार्य शपथ पत्र**:-चुनाव आयोग ने उम्मीदवारों को शपथ पत्र दाखिल करने के लिए भी अनिवार्य किया है, जिसमें उन्हें अपनी शैक्षिक योग्यता, संपत्ति, और आपराधिक पृष्ठभूमि का विवरण देना होता है। यह पहल चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता लाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

**कड़ी निगरानी**:-चुनाव आयोग चुनावों के दौरान कड़ी निगरानी रखता है ताकि चुनाव में धनबल और बाहुबल का दुरुपयोग न हो। इसके लिए चुनाव आयोग विशेष निगरानी टीमें बनाता है और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षा बलों की तैनाती करता है।

**2. सुप्रीम कोर्ट और उच्च न्यायालय**:-भारतीय न्यायपालिका विशेष रूप से सुप्रीम कोर्ट ने राजनीतिक अपराधीकरण के मुद्दे पर कई ऐतिहासिक फैसले दिए हैं। न्यायपालिका की ये पहलें राजनीति में आपराधिक तत्वों को नियंत्रित करने और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करने में महत्वपूर्ण रही हैं।

लिली थॉमस बनाम भारत संघ (2013): इस ऐतिहासिक मामले में सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया कि दोषी ठहराए गए सांसदों और विधायकों को उनकी सजा के तुरंत बाद अयोग्य घोषित किया जाएगा। इस निर्णय ने उन राजनेताओं के लिए एक कड़ा संदेश दिया जो आपराधिक मामलों में दोषी थे। इससे पहले ऐसे नेता अपनी अपील लंबित रहने तक पद पर बने रह सकते थे।

**3. भारत का विधि आयोग**:-विधि आयोग ने राजनीतिक अपराधीकरण के मुद्दे पर समय-समय पर सरकार और न्यायपालिका को सिफारिशें दी हैं। 2014 में 244वें रिपोर्ट में विधि आयोग ने सुझाव दिया कि जिन उम्मीदवारों के खिलाफगंभीर आपराधिक मामले चल रहे हैं उन्हें चुनाव लड़ने से रोका जाए। इस सुझाव का उद्देश्य चुनाव प्रक्रिया को शुद्ध करना और आपराधिक तत्वों को राजनीति से बाहर करना था।

**4. जनता और मीडिया की भूमिका**:-हालांकि जनता और मीडिया कानूनी संस्थाएं नहीं हैं, लेकिन राजनीतिक अपराधीकरण के खिलाफ जन जागरूकता बढ़ाने और जवाबदेही सुनिश्चित करने में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है। मीडिया ने समय-समय पर आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेताओं को उजागर किया है, जिससे जनता को सही जानकारी मिल सके। इसके अलावा, गैर-सरकारी संगठन और सिविल सोसाइटी ने भी राजनीतिक अपराधीकरण के खिलाफआंदोलन चलाए हैं और न्यायपालिका और सरकार पर दबाव बनाया है।

**सफलताएं** :-भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक अपराधीकरण को रोकने के लिए कई कानूनी और संस्थागत प्रयास किए गए जिनमें कुछ उल्लेखनीय सफलताएं मिली हैं।

**1. चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता**: सुप्रीम कोर्ट और चुनाव आयोग ने उम्मीदवारों के लिए आपराधिक रिकॉर्ड का खुलासा अनिवार्य किया जिससे मतदाता सूचित निर्णय ले सकते हैं। आर्थिक स्थिति का खुलासा, संपत्ति और देनदारियों का खुलासा भी पारदर्शिता को बढ़ावा देता है और भ्रष्टाचार के खिलाफएक ठोस कदम है।

**2. सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक फैसले**: दोषी नेताओं की अयोग्यता: 2013 के फैसले ने दोषी नेताओं को तुरंत अयोग्य ठहराने का प्रावधान किया जो आपराधिक तत्वों को राजनीति से दूर रखने में सहायक रहा।

**3. जन जागरूकता**:मीडिया और सिविल सोसाइटी की भूमिका ने आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेताओं के खिलाफ मतदाताओं को जागरूक किया।
मतदाता अब अधिक सतर्क हैं और चुनाव में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेताओं को हराने का प्रयास करते हैं।

इन प्रयासों ने राजनीति में पारदर्शिता बढ़ाई है और अपराधीकरण को नियंत्रित करने में प्रभावी भूमिका निभाई है।

**समाधान और सिफारिशें**:-इस समस्या का समाधान एक व्यापक और दीर्घकालिक दृष्टिकोण की मांग करता है, जिसमें कानूनी सुधार, राजनीतिक दलों की नैतिकता में सुधार और जनता की राजनीतिक जागरूकता बढ़ाना शामिल है। जब तक इन सभी मोर्चों पर ठोस प्रयास नहीं किए जाएंगे तब तक राजनीतिक अपराधीकरण की समस्या से पूरी तरह से निपटना मुश्किल होगा।

**कानूनी और संवैधानिक सुधार**:-

**दोषी उम्मीदवारों पर चुनाव लड़ने की पूर्ण पाबंदी**:-जो उम्मीदवार गंभीर आपराधिक मामलों में दोषी ठहराए गए हैं उन्हें चुनाव लड़ने से पूरी तरह रोकने के लिए सख्त कानून बनाए जाने चाहिए। वर्तमान में केवल सजा सुनाए जाने के बाद ही अयोग्यता लागू होती है लेकिन इसे विस्तारित किया जाना चाहिए ताकि जिनके खिलाफगंभीर आपराधिक मामले दर्ज हैं वे भी चुनाव नहीं लड़ सकें।

**तेजी से न्यायिक प्रक्रिया**: राजनीति से जुड़े आपराधिक मामलों को

तेजी से निपटाने के लिए विशेष अदालतों की स्थापना की जानी चाहिए। सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों का पालन करते हुए, इन मामलों का निपटारा 6 महीने के भीतर किया जाना चाहिए।

**चुनाव सुधार:** चुनाव सुधारों के तहत राजनीतिक दलों को आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को टिकट देने से रोकने के लिए कानूनी प्रावधान किए जाने चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि राजनीतिक दल अपने उम्मीदवारों के चयन प्रक्रिया में पारदर्शिता लाएं और जनता को बताएं कि उन्होंने किसी उम्मीदवार को क्यों चुना है।

**2. राजनीतिक दलों में सुधार:-**

**आंतरिक लोकतंत्र का संवर्धन:**-राजनीतिक दलों के भीतर आंतरिक लोकतंत्र को मजबूत किया जाना चाहिए। दलों को अपने उम्मीदवारों के चयन में पारदर्शिता और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अपनाना चाहिए। इसके लिए कानूनी उपाय भी किए जा सकते हैं। इससे राजनीतिक दलों के नेतृत्व में जवाबदेही बढ़ेगी और आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को टिकट मिलने की संभावना कम हो जाएगी। राजनीतिक दलों पर यह जिम्मेदारी डाली जानी चाहिए कि वे अपने किसी सदस्य के आपराधिक गतिविधियों में शामिल होने पर उसे तुरंत निष्कासित करें। इसके लिए राजनीतिक दलों के लिए एक आचार संहिता बनाई जा सकती है जिसका अनुपालन अनिवार्य हो।

**3. मतदाता जागरूकता और शिक्षा:**-मतदाताओं को अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक करने के लिए व्यापक अभियान चलाए जाने चाहिए। इसके लिए मीडिया, सिविल सोसाइटी और शैक्षिक संस्थानों की मदद ली जा सकती है। जागरूक मतदाता ही राजनीति में शुचिता ला सकते हैं। इससे मतदाता आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेताओं को वोट देने से बचेंगे और साफ-सुथरे छवि वाले उम्मीदवारों को चुनने में सक्षम होंगे।

यह मुद्दा केवल कानूनी और न्यायिक सुधारों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके समाधान के लिए समाज के हर वर्ग, राजनीतिक दलों, मतदाताओं, मीडिया और सिविल सोसाइटी की भागीदारी आवश्यक है।

**निष्कर्ष:**-राजनीतिक अपराधीकरण के खिलाफलड़ाई केवल एक कानूनी या राजनीतिक मुद्दा नहीं है बल्कि यह हमारे लोकतंत्र की मूलभूत संरचना की रक्षा का सवाल है। इसे समाप्त करने के लिए हर नागरिक, हर राजनीतिक दल और हर संस्था को एकजुट होकर काम करना होगा। यदि हम इस दिशा में ठोस कदम उठाते हैं तो हम एक स्वस्थ, सशक्त और न्यायसंगत लोकतंत्र का निर्माण कर सकते हैं जो न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी एक आदर्श उदाहरण बनेगा।

**संदर्भ सूची:-**


1. **पुस्तकें और लेख**
   गुहा, रामचंद्र इंडिया आफ्टर गांधी
   मिलिंद वैश्य, क्रिमिनल पॉलिटिक्स इन इंडिया
   शाह, के.टी, डेमोक्रसी एंड डिसकंटेंट्स
   कुमार, धीरेंद्र, पॉलिटिकल क्रिमिनलाइजेशन एंड ज्यूडिशियल एक्टिविज्म
2. **शोध पत्र और लेख**
   पॉलिटिकल क्रिमिनलाइजेशन इन इंडिया: ए थ्रेट टू डेमोक्रेसी द जर्नल ऑफपॉलिटिकल स्टडीज
   द इम्पैक्ट ऑफक्रिमिनल पॉलिटिशियन्स ऑन पॉलिटिकल पार्टीज द इंडियन पॉलिटिकल साइंस रिव्यू
   क्राइम एंड पॉलिटिक्स द इंडियन एक्पीरियंस द एशियन जर्नल ऑफपॉलिटिकल साइंस
3. **न्यायिक फैसले**
   लिली थॉमस बनाम यूनियन ऑफइंडिया, 2013
   लोक प्रहरी बनाम यूनियन ऑफइंडिया, 2018
   जन चौक समिति बनाम भारत संघ, 2002
4. सरकारी रिपोर्ट और दस्तावेज
   सातवीं केंद्रीय चुनाव आयोग रिपोर्ट, 2019
   सचिन पायलट कमेटी रिपोर्ट, 2017
   नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो रिपोट
5. समाचार पत्र और पत्रिकाएं
   द हिंदू,
   द पॉलिटिकल माफ्रिया ए डेथ ऑफडेमोक्रेसी
   इंडियन एक्सप्रेस
   क्राइम इन पॉलिटिक्स: अ नेशन इन डेंजर
   फ्रंटलाइन,
   पॉलिटिक्स एंड क्राइम: द इंटिमेट लिंक

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# जनसंचार एवं जन माध्यमों में हिन्दी का स्वरूप

**निवेदिता स्वरूप**
**डॉ. रेखा चौधरी**

1. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ए. क. पी. (पी.जी.) कॉलेज, खुर्जा, बुलंदशहर, उ. प्र.
2. एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, ए. क. पी. (पी.जी.) कॉलेज, खुर्जा, बुलंदशहर, उ. प्र.

मनुष्य की प्रकृति अकेले रहने की नहीं है। यह विशेषता केवल मनुष्य की ही नहीं है, अपितु पशु, पक्षी आदि भी अपने समूह के साथ रहते हैं। मनुष्य अपने समाज के प्राणियों के साथ संवाद करता है, जिनके साथ वह नहीं रह पाता है, उनकी जानकारी रखने की उत्सुकता रखता है। उनकी सूचना प्राप्त करने के लिए विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करता है। कभी कबूतरों का इस्तेमाल, कभी पत्रों या संदेश दूतों का प्रयोग करता है। वह ये सब इस लिए करता है ताकि अपने बारे में दूसरों को बता सके व दूसरों का हाल-चाल जान सके। अपनी इसी प्रवृति के कारण मानव ने भाषा का माध्यम बनाया।

''अपनी इस प्रवृति के कारण मनुष्य ने भाषा का सहारा लिया, आंगिक चेष्टाओं से अपनी बात कही, कभी स्तंभों पर संदेश खुदवाया, भोजपत्रों पर लिखा, संगीत और चित्रकलाओं को माध्यम बनाया। इन सबके मूल में अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त करना और अन्य की अभिव्यक्ति प्राप्त करना ही रहा है। विचारों के आदान-प्रदान की यह प्रवृति सम्प्रेषण की यह सम्पूर्ण प्रक्रिया ही संचार के नाम से जानी जाती है।''[1]

संचार भाषा या विचारों को बाँटने और प्राप्त करने की प्रक्रिया है। यह एक ऐसा प्रयास है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विचारों भावों और मनोवृत्तियों में सहभागी होता है। 'जनसंचार माध्यम' का सामान्य अर्थ है-''जनता के भावों या विचारों को सम्प्रेषित करने वाला साधन या उपकरण।''[2] जो जनता के विचारों को आदान-प्रदान करने में सहायक होता है, वह जनसंचार माध्यम कहलाता है। अर्थात् जनता के बारे में, जनता की बात, जनता तक पहुँचाना।

जिस प्रकार मानव का शारीरिक विकास भोजन पर निर्भर करता है, उसी प्रकार मानसिक विकास के लिए संचार की प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। यह मानव के बहुमुखी विकास में सहयोगी होती है और भविष्य में भी रहेगी। ''यदि यह कहा जाए कि संचार एक व्यावहारिक विज्ञान है संचार एक कला है और संचार एक आवश्यकता है, तो इसमें अतिश्योक्ति न होगी।''[3]जनसंचार का अर्थ विस्तृत आकार के बिखरे हुए समूह तक संचार माध्यमों द्वारा संदेश पहुँचाना है। संचार में किसी माध्यम की आवश्यकता होती है। जैसे-रेडियो, टेलीविजन, टेपरिकार्डर, क्लिप, वीडियो कैसेट, सी0डी0 के अलावा पत्र-पत्रिकाएँ, विभिन्न पुस्तकें, पोस्टर, पेम्फ्लेट इत्यादि। इसको किसी सीमित परिधि में रखना उचित नहीं है। इसका उद्देश्य बहुत विशाल है। वर्तमान समय में जनसंचार का कार्य, सूचना सम्प्रेषण, ज्ञान मूल्यों का प्रसार और मनोरंजन करना है। जनसंचार की भूमिका मानव जीवन के लिए अत्यंत व्यापक और महत्वपूर्ण है। यह स्रोत और स्रोता के बीच सेतु का काम करता है। यह अंग्रेजी शब्द मीडिया का पर्याय है। मीडिया का भी अर्थ होता है, दो बिन्दुओं को जोड़ने वाला। स्रोत और स्रोता दो बिन्दु हैं। इन दोनों को जोड़ने के लिए सेतु की भूमिका जनसंचार ही निभाता है।[4]

**जनसंचार माध्यम का स्वरूप और प्रकार**:-स्रोत और श्रोता तक जो संचार प्रक्रिया संप्रेषित होती है, उसमें माध्यम की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। बिना किसी माध्यम के संचार का अस्तित्व संभव नहीं है। संचार माध्यम द्वारा निम्नलिखित कार्य सम्पन्न होते हैं-

1. सूचना-संकलन एवं प्रकार
2. सूचना का विश्लेषण
3. सामाजिक मूल्य एवं ज्ञान का संचारण
4. मनोरंजन[5]

यह सही है कि संचार प्रक्रिया मानव के जन्म से ही आरम्भ हो जाती है। असभ्य व्यक्ति के पास भाषा और लिपि नहीं होती तो वह संकेतों के माध्यम से अपनी बात दूसरों तक पहुँचाता है। मानव का विकास जैसे-जैसे होता गया उसकी संचार माध्यमों में वृद्धि होती गयी। संचार माध्यमों के दो प्रकार हैं-1. परम्परागत माध्यम, 2. आधुनिक माध्यम

**जनसंचार के परम्परागत माध्यम**:-जनसंचार के परम्परागत माध्यम वे हैं, जो हमारी परम्परा की देन हैं, जोकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकसित होते चले गए हैं और इस आधुनिक युग में भी किसी-न-किसी रूप में इस्तेमाल होते रहे हैं। ऐसे परम्परागत माध्यमों की पहचान निम्नलिखित रूपों में की गई है-

1. वार्ता, 2. कथा, 3. मेला, 4. उत्सव तथा पर्व, 5. लोकनाट्य (रासलीला, रामलीला, कठपुतली, तमाशा, नौटंकी, स्वांग इत्यादि), 6. लोकगीत, 7. लोक कलाएँ (गोदना, मधुबनी पेन्टिंग, राजस्थानी चित्र कलाएँ, ब्रज की माँझी, काँगड़ा शैली इत्यादि), 8. लोक कथाएँ, 9. लोकगाथाएँ, 10. मूर्तिकला, 11. वास्तुकला, 12. ललित कलाएँ (गीत संगीत), 13. संदेश के लिए पक्षियों का प्रयोग। इन परम्परागत माध्यमों का प्रयोग संदेश सम्प्रेषण के लिए किया जाता रहा है। मनुष्य और देवताओं के बीच नारद मुनि संदेश संप्रेषण के माध्यम के रूप में चर्चित रहे हैं। पौराणिक युग में यत्र तत्र देवों द्वारा आकाशवाणी की चर्चा भी संवाद प्रेषण का ही रूप है।[6]

यदि हम संस्कृति विशेष की लोक कलाओं, लोकगीतों, लोकवाद्यों, लोकनृत्यों, लोकनाट्यों और लोक भाषा का प्रयाग अपने संदेशों को उन तक पहुँचाने के लिए करें, तो उस संदेश द्वारा अभिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति

निश्चित है, क्योंकि यही लोक संस्कृति की पहचान है। यदि हम उनकी पहचान का सम्मान करते हैं, वो हमारे संदेश का सम्मान करते हैं। उनकी बुद्धि हमारे संदेश को आत्मसात करने के मार्ग में बाधा नहीं बनती और विवाद की सारी संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं।[7]

(1). **विविध परम्परागत माध्यम**:-पर्व त्यौहारों में कथा-बांचने की अनिवार्य परम्परा आज तक भी कायम है। मेले में, उत्सवों में, शादी-विवाहों में, श्राद्ध-संस्कारों में एक ही जगह जनसमुदाय की उपस्थिति से संचार की प्रक्रिया पूरी होती है। अवसर विशेष पर लोक नाट्यों के आयोजन से लक्ष्यपरक संवाद का प्रेषण होता है। लोकगीतों, लोक कथाओं, लोकगाथाओं में भी कोई न कोई संदेश स्रोता वर्ग तक सम्प्रेषित होता ही है। मूर्तिकला हो या वास्तु कला अथवा ललित कला इन सबों के माध्यम से हजारों-हजार वर्ष से संचार का कार्य किया जाता रहा है।

' लोकगीत, ' लोकनाटक, ' नोकनृत्य, ' लोककथा और ' लोकगाथा।

**लोकनाट्य**:-लोक में प्रचलित कथाओं पर आधारित और लोगों द्वारा स्वीकृत, नाटक लोकनाट्य कहलाता है। यह किसी सुव्यवस्थित मंच की मांग नहीं करता। ये मुक्त आकाश के नीचे अपने पांव जमाता है आया है। ये अवसर के अनुसार अस्थाई मंच निर्मित करता है और स्थाई मंच की अनविार्यता से खुद को बचा लेता है। ''ये जननाटक पर्वों, धार्मिक उत्सवों एवं अनुष्ठानों के बवसरों पर खेले जाते रहे हैं। पारम्परिक लोकनृत्यों में कठपुतली (राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र), बहुरूपिया, चारबैत (राजस्थान), कीर्तन (गोवा), स्वांग (उत्तर प्रदेश) में प्रसिद्ध है।[8]

हास्य व व्यंग्य शैली में लोकनाट्य हिन्दी भाषा के माध्यम से सामान्य जन में संदेश पहुँचाने का कार्य करते हैं। कठपुतली हो या स्वांग सभी का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। ''भूमि, चबूतरे, मुंडेर, वृक्ष की शाखा दर्शकों का आसन होते हैं। स्वांग कहीं नकल, भगत, नौटंकी, तमाशा व मंच कहलाता है तो कहीं भंवई, मॉड, पार्थर, जात्रा, विदेशया, मंडौती, नृत्य कीर्तिनिया व यज्ञगान।''[9] इनका समान उद्देश्य है-मनोरंजन करना। श्रय, परिहार, प्रेम संचार और कोई गुदगुदाने वाली सिरहन पैदा करना।

स्वांग लोक नाट्यों में सबसे पुरानी कला है। लम्बे तथा कथाप्रधान लोकगीतों में वर्णन जब अभिनय की मांग करने लगा तब नाटक का सूत्रपात हुआ। आरंभ में नाटक का स्वरूप गीतात्मक ही रहा करता था। हिन्दी की बोलियों के पूर्व भी लोक नाट्य की परम्परा थी और अपभ्रंश तथा प्राकृत में तो यह परम्परा पूर्ण प्रभावी थी। इन्हीं अपभ्रंश तथा प्राकृत लोक नाट्यों से छाया ग्रहण करके ही हिन्दी बोलियों का लोक नाट्य रूपादित हुआ है।[10] स्वांग उन विरल लोक नाट्यों में है जो सीधे अपभ्रंश और प्राकृत से आयत हुआ है। स्वांग जीवन की अनुभूति है और हास्य व्यंग्य से परिपूर्ण भी। गीत और गद्य का यह चम्पू नाटक है। रामलीला और रासलीला में पात्रों को सुरूप ही कहा जाता है। स्वांग अनेक रूपों प्रदर्शित किया जाता है। विवाह, नाटक नौटंकी, उत्सव आदि के अवसर पर स्वांग का आयोजन होता है।[11]

''लोकनाट्य संवादों के माध्यम से किसी रोचक कथा प्रसंग को प्रस्तुत करके सामान्य जनता का मनोरंजन करता है। इसके संवाद गीतात्मक होते हैं। लोकनाट्य के कितने ही रूप हमें मिलते हैं। स्थूल रूप में कुछ नाम उदाहरणार्थ हैं-1. रास, 2. स्वांग, 3. भंड़ैती या नकल, 4. भगत या नौटंकी, 5. संगीत स्वांग, 6. खोइया, 7. शारीरिक या कायिका।''[12]

**लोकगीत**:-लोकगीत निश्छल हृदय से सहज स्वाभाविक रूप से उद्भूत वह भाव है, जो जनवाणी पाकर अपनी व्यस्था-कथा कह जाते हैं। विभिन्न अवसरों पर स्त्रियाँ अपने कोकिल कण्ठ से गीत कागर अपने हार्दिक उल्लास और आनन्दानुभूति को प्रकट करती हैं। लोकगीत लोकमानस के व्यक्तिगत और सामूहिक सुख, दुख की लयात्मक अभिव्यक्ति होते हैं।

''प्राचीनकाल में मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित 16 संस्कारों का विधान था, जो सभी शास्त्रीय थे, जिनका सम्बन्ध जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक के काल से है।''[13] लोकगीत किसी क्षेत्र विशेष में गाये गीत होते हैं। यह लोगों में घनिष्टता बढ़ाने का एक उत्तम साधन हैं। विकासात्मक कार्य या किसी समस्या के समाधान करने के लिए लोक जन सामान्य की वाणी बन जाते हैं। जिसे लोक रूचिपूर्ण ग्रहण करते हैं, जैसे-''बाबुल निबिया जन कटे व निबिया चिरैया बसेर'', यहाँ दरवाजे की नीम पर बैठी चिड़िया प्रकृति व्यापार न होकर घर की बिटिया बन जाती है। लोकगीतों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है- (1) संस्कार गीत, (2) व्रत गीत, (3) श्रम गीत, (4) ऋतुगीत, (5) जाति गीत[14]

डॉ. उपाध्याय ने लोककथाओं को वर्णय विषय की दृष्टि से निम्न भागों में विभाजित किया है-(1) उपदेश कथा, (2) व्रतकथा, (3) प्रेमकथा, (4) मनोरंजन कथा, (5) सामाजिक कथा, (6) पौराणिक कथा।[15]

**लोककथा व लोकगाथा**:-लोक कथाएँ लोक में प्रचलित वे कहानियाँ हैं, जो मनुष्य की कथा प्रवृत्ति के साथ चलकर विभिन्न परिवर्तनों के साथ वर्तमान में प्राप्त होती है। लोकगीतों की भांति लोककथाएँ भी हमें मानव की परम्परागत विरासत के रूप में प्राप्त होती हैं। ये मौखिक कहानियों की वह श्रृंखला है जिसमें हम मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को साकार होते हुए देखते हैं। ये कहानियाँ किसी व्यक्ति विशेष की सम्पदा न होकर जनमानस में एक मुख से दूसरे मुख द्वारा सुनी-सुनाई जाती है। वही लोकगाथाएँ किसी अज्ञात रचियता द्वारा रचित होती है। यह समाज की ऐसी धरोहर होती है, जो गेय होने के साथ-साथ कलात्मकता का भी निर्वाह करती हैं। इनमें ''लोरकी, विजयमल, नयकवा व वनजारा, भरथरी, गोपीचंद, सोरठी, हीर-राँझा, ढोला-मारू, राजा रसालू आदि हैं। डॉ. उपाध्याय ने प्रथम प्रकार के गीतों को लोकगीत और द्वितीय प्रकार के गीतों को लोकगाथा का नाम दिया है।''[16] जनसंचार माध्यमों में लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, लोकगीत, लोकनाट्य आदि परम्परागत माध्यम हैं। इन परम्परागत माध्यमों का प्रभाव अभूतपूर्व है क्योंकि शिक्षा के अभाव में रेडिया, टी0वी0, समाचार पत्र पत्रिकाएँ न तो ग्राम्यांचलों की पहुँच में है न वे सभी को लाभान्वित कर सकते हैं। इसलिए अधिकांश ग्रामवासी इन्हीं परम्परागत माध्यमों पर निभर हैं, जिनके सकारात्मक प्रभाव हमें समय-समय पर देखने को मिलते हैं। चूँकि ये परम्परागत संचार माध्यम स्थानीय बोली भाषा अथवा स्थान विशेष की सांस्कृतिक सभ्यता के अनुरूप होते हैं, इसलिए भी इन माध्यमों का प्रभाव सीधी साधी, ग्रामीण, अशिक्षित और आदिवासी जनता पर शीघ्र व गहरा पड़ता है।[17] परम्परागत माध्यमों का रूप कोई भी हो सकता है चाहे शास्त्रीय (जिन्हें आसानी से समझा नहीं जा सकता) या फ्रि लोकगीत, लोक संगीत किसी भी क्षेत्र विशेष से सम्बन्ध रखने वाले ये सभी अपना संदेश जनता तक पहुँचाने में सक्षम होते हैं तथा अपने सामाजिक मूल्यों को जीवित रखते है। प्रत्येक समुदाय के सामाजिक मूल्य अलग-अलग होते हैं। पारसी समुदाय के अलग तथा यहूदी समुदाय के अलग। लेकिन परम्परागत माध्यमों में अन्य लोगों की आस्था, विश्वास तथा मूल्यों की भी कद्र की जाती है तथा उन्हें एक स्वरूप प्रदान किया जाता है। ये माध्यम सामाजिक परिवर्तन लाने की दिशा में भी

सकारात्मक भूमिका अदा करते हैं।[18]

**आधुनिक जनसंचार माध्यम**:-आधुनिक जनसंचार माध्यमों के तीन रूप या प्रकार हैं, जिनमें मुद्रण माध्यम, इलैक्ट्रॉनिक माध्यम एवं नव इलैक्ट्रॉनिक माध्यम में विभाजित किया जाता है। मुद्रण माध्यम में समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पैम्फलेट, पोस्टर, जर्नल पुस्तकें इत्यादि आते हैं। इलैक्ट्रॉनिक माध्यम के अन्तर्गत रेडियो, टेलीविजन एवं फिल्में आती है। कम्प्यूटर और इंटरनेट जनसंचार के नव-इलैक्ट्रॉनिक माध्यम हैं। इनमें से रेडिया, टेलीविजन एवं इंटरनेट वेब तरंगों के माध्यम से कार्य करते हैं। इन्हीं वेब तरंगों की सहायता से सूचना का आदान-प्रदान करने में मोबाइल भी काफी सुगम व सशक्त साधन बन गया है।

आधुनिक जनसंचार माध्यम के अनेक रूप हैं, लेकिन सूचना देने और मनोरंजन आदि की दृष्टि से जो जनप्रिय संचार माध्यम है, उनमें मुख्य हैं-प्रेस, समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, टी0वी0, फिल्म, इंटरनेट एवं कम्प्यूटर इत्यादि।

**मुद्रण माध्यम - प्रेस (पत्र-पत्रिकाएँ)**:-मुद्रित माध्यम के रूप में पुस्तकें, विज्ञापन, पोस्टर आदि आते हैं तथा प्रेस में छपने के कारण पत्र-पत्रिकाओं को भी इस वर्ग में रखा जाता है, लेकिन पत्रकारिता और संचार माध्यम के रूप में सर्वमान्य पत्र-पत्रिकाएँ ही हैं। इसलिए पत्रकारिता की भाषा में प्रेस का जो सर्वमान्य अर्थ ग्रहण किया जाता है, वह पत्र-पत्रिकाएँ ही हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी की सुविधा और कम्प्यूटर के उपयोग से समाचार पत्रों व पत्रिकाओं का मुद्रण जहाँ काफी सरल हो गया है। हिन्दी टंकण भी बहुत सुगम हो गया है। हिन्दी में टंकण व फाण्ट होने से प्रेस या मुद्रण-माध्यम की उपयोगिता अब और अधिक बढ़ गई है। सामान्य जनता तक सूचना पहुँचाना मुद्रित पत्रकारिता की जिम्मेदारी है।

''आधुनिक जनसंचार माध्यमों के उपयोग में विभिन्न विधाओं से सम्बन्धित सामग्री का प्रकाशन होता है। इनमें राजनीतिक पत्र-पत्रिकाएँ, सांस्कृतिक पत्रिकाएँ, धार्मिक पत्रिकाएँ, बाल पत्रिकाएँ, आर्थिक पत्रिकाएँ, कृषि पत्रिकाएँ, शिक्षा पत्रिकाएँ, विज्ञान पत्रिकाएँ, महिलोपयोगी पत्रिकाएँ, फिल्म पत्रिकाएँ, स्मारिकाएँ इत्यादि आते हैं।''[19]

''हिन्दी पत्रों एवं पत्रिकाओं का सिलसिलेवार अध्ययन किया जाए तो 'उदंत मार्तंड' के बाद 1845 को 'बनारस अखबार' प्रकाशित हुआ जो हिन्दी प्रदेशों का पहला समाचार पत्र था। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। हिन्दी जगत में हिन्दी को प्रतिष्ठित कराने का श्रेय भारतेन्दु जी को जाता है। हिन्दी गद्य एवं पद्य दोनों को ही भारतेन्दु जी ने आगे बढ़ाया।''[20]

**रेडियो: एक श्रव्य माध्यम**:-रेडियो इनमें पहला माध्यम है, जिसमें इलेक्ट्रॉनिक तकनीक का प्रयोग हुआ है। यह श्रव्य माध्यम है। ध्वनि तरंगों के सहायता से दूर दराज के क्षेत्रों तक सूचना-समाचारों का संप्रेषण रेडियो द्वारा ही संभव हो सका। इस माध्यम ने समाज में एक नई सूचना क्रांति उपस्थित की है। जनता में लोकप्रिय रेडियो स्टेशनों में से पहला स्थान 'विविध-भारती' को ही दिया जाता है। 'विविध-भारती' रेडियो ने अनेक प्रेरक प्रसंग के माध्यम से लोगों का न केवल मनोरंजन किया है बल्कि जनता को सही ज्ञान से परिचित भी करवाया है। ''इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने हमें बहुत सारी अंधविश्वासों और नए-नए ज्ञान से अवगत करवाया है और इसी तले इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अवगुण दब गए। विद्वानों का यह कहना कि आज टीवी चैनल और पत्र-पत्रिकाओं से बच्चों की कल्पनाएँ प्रायोजित व अनुकूलित छवियों के चपेट में आ जाती हैं। उनकी कल्पना से प्रकृति लुप्त रहती है। विकसित राष्ट्रों और नव-धनिक परिवारों में यह रोग बुरी तरह से फैला हुआ है। यह सही है पर पूर्ण नहीं है।''[21] ''रेडियो पर साहित्य, कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज कल्याण, युवा, विश्वविद्यालय, पत्रकारिता, इतिहास, खेलकूद, महिला कल्याण, समाज सुधार इत्यादि से सम्बन्धित कार्यक्रमों (साक्षात्कार, विचार गोष्ठी, काव्य पाठ, नाटक, रूपक, न्यूजरील, रेडियो रपट इत्यादि) का प्रसारण होता है। जनमाध्यम के रूप में प्रसारित कार्यक्रमों को सुनकर, केवल सुनकर ग्रहण किया जा सकता है।''[22] ''भारत गांवों का देश है, जिसकी लगभग अधिसंख्यक जनता आज भी गॉवों में ही निवास करती है। भारत विविधता में एकता वाला एक ऐसा देश है, जिसके प्रत्येक प्रान्त एवं हिस्से में भिन्न भाषा एवं भिन्न-भिन्न संस्कृति पायी जाती है। ऐसी स्थिति में पूरे देश को एक सूत्र में बांधने का काम रेडियो के अतिरिक्त अन्य किसी माध्यम से संभव नहीं दिखाई देता। क्योंकि भारत की भौगोलिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को देखते हुए भारत के गांवों में उनकी विभिन्न जरूरतों के अनुरूप केवल रेडियो ही उनकी आवश्यकता की पूर्ति पूरी तरह से कर सकता है।''[23]

''इसी प्रकार मजदूरों, रिक्शा चालकों, फैक्ट्री के वर्करों या घर पर खाली वक्त में स्वेटर आदि बनाने का काम करने वाली घरेलू महिलाओं के मनोरंजन के लिए रेडियो पर दिन में काफी समय तक फिल्मी गीतों या गांवों में प्रचलित गीतों का प्रसारण किया जाता है। जिसमें फिल्मी धुन गुन गुनाकर काम करने वाले मजदूरों का उत्साह दोगुना हो जाता है।''[24]

**टेलीविजन: जनसंचार का दृश्य-श्रव्य माध्यम**:-''दूर तक चित्रों को प्रसारित करने की कला यद्यपि सन् 1890 में ही प्रकाश में आ चुकी थी, लेकिन जे.एल. बेयर्ड ने सन् 1925 में पहली बार एक ऐसा उपकरण बनाने में सफलता पाई, जिसके माध्यम से प्रभावशाली ढंग से चित्र प्रसारित करना संभव हुआ।''[25] ''दूर-दर्शन ने समाचार पत्रों और आकाशवाणी का स्थान ले लिया है। यह सूचना, समाचार, मनोरंजन और विज्ञापन का माध्यम बन गया है। संप्रति भारत की 80 प्रतिशत आजादी इसकी परिधि में है। 834 प्रसार केंद्र तथा 41 कार्यक्रम निर्माण केंद्रों की सहायता से 19 चैनलों पर कार्यक्रम प्रसारित किए हैं। 583 ट्रांसमीटरों की सेवा ने इसकी प्रसारण-क्षमता में बेतहाशा वृद्धि की है। यह जनमत-निर्माण में महत्वपूर्ण सहभागी है।''[26] ''फिल्म निर्माता ढुढ़राज गोविंद फालके (दादा साहब फालके) ने प्रथम भारतीय हिन्दी फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' बनायी, जिसे 3 मई 1913 को प्रदर्शित किया गया। यह मूक फिल्म थी। इसके पूर्व 'पुंडलीक' फिल्म का भी निर्माण जरूर हुआ, लेकिन इसमें आधा निर्माण ब्रिटिश पैटर्न पर ही हुआ था। भारतीय की विशुद्ध झलक 'राजा हरिश्चंद्र' में होने के कारण भारतीय सिनेमा का जनक दादा साहब फालके को ही माना जाता है।''[27]

भारतीय फिल्म-निर्माण का दौर आरंभ हुआ तो वह कभी रूका नहीं। फिल्मों के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों, संस्कृति का संरक्षा और अंग्रेजों के विरूद्ध आवाज उठने लगीं। 'दुनिया न माने', 'पड़ोसी', 'आदमी', 'देवदास', 'मुक्ति', 'विद्यापति', 'सीता', 'अछूत कन्या', 'संत तुकाराम', 'वतन', 'एक ही रास्ता' आदि फिल्मों के माध्यम से जन-जागरण का प्रयास आरंभ हो गया। ''भारत में बनने वाली फिल्मों में ऐतिहासिक, पौराणिक, देश-भक्ति, सामाजिक विषयों को आत्मसात् किया गया है। फिल्मों की सकारात्मक भूमिका और आम जन-जीवन पर उसके सकारात्मक प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।''[28] ''भारतीय संस्कृति संदर्भ में हिन्दी

और हिंदीतर भाषा में जो फिल्में बनी हैं उनमें प्रमुखतः आठ प्रकार हैं- (1) फीचर फिल्म, (2) बाल फिल्म, (3) वृत्तचित्र फिल्म, (4) टेलीविजन फिल्म, (5) न्यूज फिल्म, (6) विज्ञापन फिल्म, (7) इंस्ट्रक्शन फिल्म व (8) पब्लिक रिलेशंस फिल्म।''[29]

**जनसंचार के नवीनतम माध्यम (कम्प्यूटर एवं इंटरनेट):**-कम्प्यूटर में हिन्दी का भविष्य सुनहरा एवं उम्मीदों से युक्त परिलक्षित होता है। संभव है कि आज जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती, जल्द ही वह संभव हो जाए तथा आने वाले समय में कम्प्यूटर पर हिन्दी का अधिकार हो। वर्तमान समय में कम्प्यूटर, लैपटॉप, स्मार्टफोन तथा टैबलेट आदि डिजिटल उपकरण हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बन चुके हैं। वर्तमान समय में लगभग इन सभी उपकरणों में हिन्दी में काम करना संभव है। भाषाई समर्थन ने तकनीकी विभाजन की दूरी को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। कम्प्यूटर पर भारतीय भाषाएँ अब केवल टाइपिंग तक सीमित न रहकर शॉर्टिंग, इंडैक्सिंग, सर्च, मेल मर्ज, हेडर-फुटर, फुटनोट्स, टिप्पणियाँ आदि सब कम्प्यूटरी कार्यों में सक्षम हो गयी हैं। यहाँ तक कि अब फाइलों के नाम हिन्दी में दिए जा सकते हैं। संचार माध्यमों के क्षेत्र में सबसे बड़ी वैज्ञानिक उपलब्ध है-'इंटरनेट' का आर्विभाव। लगभग 22 लाख कम्प्यूटर एक-दूसरे से जुड़कर पारस्परिक सूचनाओं का आदान-प्रदान दूर-दर्शन या किसी प्राइवेट चैनल का दर्शक टी0वी0 सेट पर कार्यक्रम देखने की सुविधा ही उठा पाता है। मल्टीमीडिया सिस्टम भी कम्प्यूटर की भांति सभी सूचनाओं का अंकन, प्रोसेसिंग, एकत्रीकरण एवं डिलीवरी बाइनरी कोड में करता है और इसके कारण यह कई सुविधाएँ प्रदान करने में समर्थ होता है। प्रकाशन, मनोरंजन, दूरसंचार, शिक्षण, प्रशिक्षण, खेल, निर्माण, अभियंत्रण, औद्योगिक उपक्रमों में प्रक्रिया परिवीक्षण इत्यादि क्षेत्रों में यह उपयोगी सिद्ध हुआ है।[30]

''सूचना प्रौद्योगिकी की सुविधा का इस्तेमाल समाचार-पत्रों में भी हो रहा है। इसमें कम्प्यूटर की सुविधा का इस्तेमाल हो रहा है। सम्पादन और साज-सज्जा का कार्य कम्प्यूटरों पर हो रहा है। समाचार पत्रों की सामग्री इंटरनेट पर पढ़ने की सुविधा भी उपलब्ध हो गई है।''[31] वर्तमान दौर में तकनीकी के आगमन के बाद जनसंचार के विभिन्न माध्यमों में हिन्दी का वर्चस्व तेजी से बढ़ने लगा है। जनसंचार के इन माध्यमों की हिन्दी सामान्य बोलचाल के निकट होती है। लेकिन मानकता की दृष्टि से वह भी निर्धारित मापदण्ड पर सही नहीं ठहरती। इसका कारण है कि जनसंचार का मुख्य उद्देश्य समाज के विशाल वर्ग तक सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की सूचना को सम्प्रेषित करना है और भारत जैसे विशाल राष्ट्र में सरल एवं सुबोध भाषा के द्वारा ही विशाल जनसमुदाय तक अभिव्यक्ति सम्भव हो सकती है। इसलिए जनसंचार के माध्यमों में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के शब्दों का व्यावहारिक प्रयोग उसे मानकता से परे करता है।

**निष्कर्षतः** कहा जा सकता है कि जनसंचार के जनमाध्यमों में परम्परागत व आधुनिक दोनों ही माध्यमों का विशेष महत्व है। जहाँ जनसंचार के सशक्त माध्यम के रूप में सभी आधुनिक माध्यमों ने देश की समस्याओं व चुनौतियों को सुलझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, वहीं परम्परागत माध्यम आज भी संचार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इन सभी माध्यमों में हिन्दी का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। जनसंचार माध्यम भाषा, समाज और संस्कृति के साथ सकारात्मक पक्षों को लेकर चलता है। हिन्दी का एक मजबूत पक्ष यह है कि यह बाजार की भाषा बन गयी है, जो इसकी उपयोगिता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

**संदर्भ सूची:-**


1. डॉ0 जितेन्द्र वत्स - हिन्दी पत्रकारिता और जनसंचार माध्यम, निर्मल पब्लिकेशन्स, पृष्ठ-17 ।
2. वही, पृष्ठ-18 ।
3. सरोजनी नांदल - भारतीय मीडिया: अंतरंग पहचान, डॉ0 स्मिता मिश्र, पृष्ठ-213 ।
4. डॉ0 जितेन्द्र वत्स - हिन्दी पत्रकारिता और जनसंचार माध्यम, निर्मल पब्लिकेशन्स, पृष्ठ-19 ।
5. वही, पृष्ठ-19 ।
6. वही, पृष्ठ-20 ।
7. मीडिया विमर्श, पृष्ठ-263 ।
8. डॉ0 राजेश श्रीवास्तव 'शम्बर' - लोकसाहित्य, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृष्ठ-78
9. लेखक सुस्मिता बाला - समकालीन संचार सिद्धान्त, सम्पादक अम्बरीष, डी0पी0एस0 पब्लिकेशन, पृष्ठ-75 ।
10. डॉ0 राजेश श्रीवास्तव 'शम्बर' - लोक साहित्य, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृष्ठ-91
11. वही, पृष्ठ-91 ।
12. डॉ0 सत्येन्द्र-लोक साहित्य विज्ञान, राजस्थानी ग्रन्थागार, पृष्ठ-134।
13. डॉ0 राजेश श्रीवास्तव 'शम्बर' - लोक साहित्य, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृष्ठ-19
14. कृष्णदेव उपाध्याय - लोक साहित्य की भूमिका, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ-131 ।
15. वही, पृष्ठ-131 ।
16. वही, पृष्ठ-94 ।
17. लेखक सुस्मिता बाला- समकालीन संचार सिद्धान्त, सम्पादक अम्बरीश सक्सैना, पृष्ठ-76 ।
18. वही, पृष्ठ-77 ।
19. नवीन चन्द्र पंत - पत्रकारिता के मूल सिद्धान्त, कनिष्ठ पब्लिशर्स, पृष्ठ-151-156 ।
20. लेखक सुस्मिता बाला - समकालीन संचार सिद्धान्त, सम्पादक अम्बरीश सक्सैना,पृष्ठ-82 ।
21. मीडिया विमर्श - जुलाई दिसम्बर 2019 ।
22. शोधश्री - जनवरी मार्च 2021, पृष्ठ-74 ।
23. लेखक सुस्मिता बाला - समकालीन संचार सिद्धान्त, सम्पादक अम्बरीश सक्सैना, पृष्ठ-86 ।
24. वही, पृष्ठ-88 ।
25. जितेन्द्र वत्स - हिन्दी पत्रकारिता और जनसंचार माध्यम, निर्मल पब्लिकेशन, पृष्ठ-26
26. वही, पृष्ठ-27 ।
27. वही, पृष्ठ-28 ।
28. वही, पृष्ठ-29 ।
29. वही, पृष्ठ-31 ।
30. वही, पृष्ठ-35-36 ।
31. वही, पृष्ठ-24 ।

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# वर्तमान परिदृश्य में स्थानीय स्व-शासन से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों में पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता

**डॉ. ब्रजेश खेर**

पुर्व शोधार्थी, मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन, मप्र.

**प्रस्तावना**:–भारतीय राजनीति को नया वैचारिक धरातल देने वाले पं. दीनदयालय उपाध्याय समाज में साधारण मानव की गरिमा को स्थापित करने के लिए लगातार प्रयास करते रहे। साथ ही दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में उनकी सबसे बड़ी विचारधारा 'एकात्म मानववाद' का मकसद था स्वदेशी, सामाजिक, आर्थिक मॉडल को अपनाना और उन्होंने अपने विचार सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिदृश्य में रखे। साथ ही पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का जीवन सामाजिक समरसता का अनुपम उदाहरण है।[1] राष्ट्र निर्माण और समाज सेवा को ही अपना लक्ष्य मानकर जीवन पर्यन्त उसके लिए कार्य करते रहे और पूरी दुनिया को एकात्मक मानववाद की प्रगतिशील विचारधारा से परिचित कराने वाले उपाध्याय जी का जन्म 25 सितम्बर 1916 को हुआ तथा उन्होंने भारतीय जनसंघ के नेता होने के साथ ही भारतीय चिन्तन को वैचारिक दिशा प्रदान की और अपना पूरा जीवन लोकतंत्र को मजबूत और शक्तिशाली बनाने में समर्पित कर दिया। जीवन में व्यक्तिगत सुचिता और गरिमा के उच्चतम आयाम स्थापित किए तथा वे वर्ष 1937 में राष्ट्रीय सवयं सेवक संघ में शामिल हुए तथा इनकी जनसंघ में महत्वपूर्ण भूमिका थी और उन्होंने पूरे देश में जनसंघ के माध्यम से राष्ट्रनिर्माण की दिशा में कार्य किए तथा राष्ट्र एवं समाज सेवा के लिए 21 सितम्बर, 1951 को लखनऊ में राजनीतिक सम्मेलन का आयोजन से देश में एक नये राजनीतिक दल भारतीय जनसंघ की राज्य इकाई की स्थापना की और इसके एक माह बाद 21 अक्टुम्बर, 1951 में श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने जनसंघ की स्थापना की और प्रथम सम्मेलन की अध्यक्षता की। स्थापना के बाद से ही उपाध्याय जी का जीवन दो भागों में समर्पित हो गया जिसमें पहला एक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ओर दूसरा जनसंघ तथा भारतीय जनसंघ को राजनीति में स्थापित करने का श्रैय पं. दीनदयाल उपाध्याय को जाता है और वर्ष 1952 में उन्हें जनसंघ का महामंत्री नियुक्त किया और 1952 से 1967 तक जनसंघ के नीति-निर्धारक और पथप्रदर्शक की भूमिका निभाते रहे।[2] दिसम्बर, 1967 में उपाध्यायजी को राष्ट्रीय अध्यक्ष जनसंघ का बनाया तथा 1965 में भारतीय जनसंघ ने ''एकात्मक मानववाद'' को स्वीकार्य किया भारत की आजादी से पहले और (भारत की आजादी) के बाद कई ऐसे महापुरूष हुए जिन्होंने अपने बुते समाज को बदलने की कोशिश की साथ ही समाज और देश की सेवा करते हुए खुशी से मौत को गले लगालिया उन्हीं में से एक है।[3] पं. दीनदयाल उपाध्याय, जो सादगी और ईमानदारी की मिसाल के रूप में जीवन भर जनता और राष्ट्र की सेवा करते रहे वह बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे तथा कुशल, अर्थचिन्तक, संगठन शास्त्री, शिक्षाविद, राजनीतिज्ञ, वक्ता, लेखक और पत्रकार जैसे अनेक प्रतिभा उनमें छिपि थी। तथा एकात्मक मानववाद का विचार देकर मानव के कल्याण का मार्ग समाज के सामने रखा जिसकी प्रासंगिकता समय के साथ धीरे-धीरे बढ़ती गई तथा उपाध्याय जी का सम्पूर्ण जीवन आज भी हमारी प्रेरणा के स्त्रोत है।[4]

पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की वर्तमान प्रांसगिकता में भारतीय जनता पार्टी उनके राष्ट्र को समर्पित, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक 'एकात्मक मानववाद' की विचारधारा से प्रभावित होकर देश के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदीजी ने इनके विचारों को आत्मसात करके पूरे देश में इनके योगदान व बलिदान को ध्यान में रखकर आज देश में उनके नाम से व उनके विचारों पर आधारित बहुमुखी विकास योजनाएँ निरन्तर संचालित की जा रही है जिससे आज देश में स्थानीय स्तर पर विकासात्मक आमूल चूल परिवर्तन हुए है, विशेषकर गरीबी की दिशा में शासन द्वारा संचालित योजना-''गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रम'' के क्रियान्वयन के कारण पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का अपना समाज के अन्तिम छोर पर खड़े गरीबों का कल्याण करना चाहते थे जो वर्तमान में पूरा होता दिखाई दे रहा है, इसके लिए स्थानीय स्वशासन पंचायतों के माध्यम से गाँवों का बहुमुखी विकास व अधोसंरचनात्मक रूप से भी ग्रामीणों को आत्मनिर्भार किया जा रहा है, जो कि मौजूदा सरकार की आत्मनिर्भरता योजना से संबंधित है।[5] वर्तमान में स्थानीय स्तर पर परिलक्षित होता है कि पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों को विभिन्न योजनाओं के द्वारा साकार किया जा रहा है, तथा ग्रामीण जनों के जीवन स्तर, गरीबी एवं बेरोजगारी सुधार में अपेक्षाकृत निरंतर वृद्धि हो रही है। जिससे वे अपना एवं समाज का सर्वांगीण विकास कर रहे है, एवं राष्ट्रनिर्माण में उनकी भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है । इसी दिशा में हमारे देश के माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि-''हम सब पं. दीनदयाल उपाध्याय के दिखाए मार्ग पर चले और मिलकर एक ऐसे विकसित और न्यायपूर्ण भारत के उनके सपने को पूरा करे जहाँ समाज के सर्वाधिक वंचित व्यक्ति की परवाह की जाती है।

**उद्देश्य**:-

1. **वर्तमान परिदृश्य में स्थानीय स्वशासन**:-वर्तमान में स्थानीय स्व. शासन प्रजातंत्र के बुनियादी मूल्यों समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व पर आधारित राजनैतिक निर्णयों में सत्ता के विकेन्द्रीकरण एवं जन सहभागिता के पारस्परिक घनिष्ठ संबंधों पर आधारित है। प्रजातंत्र की मूल मान्यता, सर्वोच्च सत्ता का जनता में निहित होना तथा सर्वोच्च शक्ति का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण कर उसमें व्यक्ति की प्रत्यक्ष सहभागिता को शासन कार्यो में प्रमुख स्थान देना ओर इन संस्थाओं को जहाँ प्रजातंत्र की आधारशीला कहा जाता है, वही जनता को जागरूक कर लोकतंत्र के विश्वास का पाठ पढ़ाती

है।[6] भारत जैसे विकासशील देश में लगभग 2/3 से अधिक जनसंख्या, गाँवों में निवास करती है, वहाँ पर स्थानीय स्व-शासन की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है डी. टाकविले के अनुसार-''स्वतंत्र राष्ट्रों की शक्ति स्थानीय संस्थाएँ होती है। एक देश स्वतंत्र शासन की स्थापना कर सकता है, लेकिन स्थानीय संस्थाओं के बिना स्वतंत्रता की भावना नही हो सकती है।

स्थानीय स्वशासन के प्रजातांत्रिक महत्व को देखते हुए हमारे देश के संविधान में 73 वां (ग्रामीण स्थानीय स्वशासन) 74 वां (शहरी स्थानीय स्वशासन) संविधान संशोधन करते हुए, संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया, तथा 24 अप्रैल 1993 को लागू किया। यह देश में केन्द्र तथा राज्य सरकार के बाद वर्तमान में तीसरे स्तर की सरकार बन गई।[7]

**2. गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों में पं. दीनदयाल उपाध्याय का योगदान:-** स्वतंत्रता के पूर्व से ही पं. दीनदयाल उपाध्याय एकात्मक भारत तथा स्वदेशी एवं गरीब व पिछड़े वर्गो के उत्थान के लिए निरंतर प्रयास करते रहे, इस हेतु उन्होंने-अंत्योदय शब्द दिया जिससे इन लोगों का विकास हो सके। आजादी के बाद उनके सम्मान में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 98वीं जंयती के अवसर पर 25 सितम्बर 2014 को अंत्योदय दिवस की घोषणा की। साथ ही वर्तमान में इन क्षेत्रों में निवासरत लोगों के सर्वांगीण विकास तथा आत्मनिर्भर बनाने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा विभिन्न अंत्योदय योजनाएँ चलाई जा रही है जिनमें दीनदयाल अंत्योदय योजना को आवास एवं शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय (एच.यू.पी.ए.) के तहत शुरू किया था। यह योजना राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन और राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन का एकीकरण है। इस योजना में अभी शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में केवल 790 शहरों एवं कस्बों की कवर किया है, जिससे इन क्षैत्रों के लोगों के जीवन स्तर में सुधार व मूलभूत आवश्यकताओं की आसानी से पूर्ति हो सके इसके लिए भारत सरकार निरन्तर प्रयासरत है।

**साहित्य समीक्षा:-**जोशी एण्ड भारद्वाज (2000) में अपनी पुस्तक; 'भारत में स्थानीय प्रशासन' के संदर्भ में लेखक ने देश के सभी राज्यों के वित्त आयोग तथा कार्मिक प्रशासन का सूक्ष्म एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत कियां साथ ही ग्रामीण क्षैत्रों में व्याप्त समस्याओं जैसे भूखमरी, बेरोजगारी के समाधान हेतू केन्द्र सरकार की अंत्योदय योजनाओं के क्रियान्वयन की दिशा में ध्यान नहीं दिया गया।

जोशी आर.पी. (1998), ने ''पंचायती राज के नवीन आयाम'' में लेखक के द्वारा सम्पूर्ण देश की पंचायती राज व्यवस्थाओं की ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि का उल्लेख के साथ ही वर्तमान पंचायत राज व्यवस्था का भी विवरणात्मक उल्लेख प्रस्तुत किया तथा केन्द्र राज्य संबंधों के टकराव से पंचायतों के विकास कार्यो में उत्पन्न बाधाओं का उल्लेख विस्तार से किया।

नरेन्द्र शिवाजी पटेल, (2016) ने अपनी पुस्तक ''दीनदयाल उपाध्याय'' 'एकात्मक मानव दर्शन'- में दीनदयाल उपाध्याय के जीवन संघर्ष और एकात्मक राष्ट्र के प्रयासों का उल्लेख किया तथा उन्होंने कभी भी प्रसिद्धि की कामना नही रखी और हमेशा मानव जाति के उत्थान के लिए निरन्तर प्रयास करते रहे। साथ ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से सम्पर्क व अटूट संबंध, जनसंघ स्थापना, विकास और विस्तार में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। साथ ही सांस्कृति पुनरोत्थान, चुनाव नियमों में संशोधन, भारत में स्थित विदेशी निवेश, कर नीति तथा बहुसूत्रीय बिक्री कर, पुर्नवास तथा पंचवर्षीय योजना, उक्त विषयों पर विस्तृत प्रस्ताव प्रस्तुत किए जिनका उल्लेख लेखक ने बहुत ही काल खण्ड़ों में विश्लेषणात्मक रूप से प्रस्तुत किया है।

यतीन्द्र सिंह सिसोदिया (2001) द्वारा संपादित पुस्तक-''मध्यप्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था के विविध आयाम'' में भारत के मध्यप्रदेश राज्य की पंचायत राज व्यवस्था के सभी पहलुओं का बहुत ही विस्तारपूर्वक अध्ययन किया है साथ ही गाँवों के विकास के लिए ग्राम सभा एवम् संरपच की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। और ग्रामीण स्तर पर जो निर्णय लिए जाते है उसकी स्थिति आज भी सशक्त नही हो पाई है, जिस कारण आज भी ग्रामीण स्तर पर स्वीकृत कार्यो में ग्रामीणों की भूमिका का अभाव दिखाई देता है तथा प्रमुखता से ग्राम सभी की वास्तविक स्थिति का सूक्ष्म एवं विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया।

**शोध प्रविधि:-**वर्तमान परिदृश्य में स्थानीय स्वशासन से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रांसगिकता को जानने के लिए प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों का अध्ययन किया गया तथा शोध प्रपत्र के शीर्षक और उद्देश्य को ध्यान में रखकर उद्धेश्यात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है।

उपर्युक्त मे, स्थानीय स्व-शासन से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के योगदान को भुलाया नही जा सकता क्योंकि उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन मानव सेवा एवं एकात्मक राष्ट्र को बनाने में समर्पित कर दिया। साथ ही 'राष्ट्रीय स्वयं संघ' से भी बहुत अधिक प्रभावित थे और उन्होंने इस संगठन को मजबूती प्रदान की तथा गरीब और वंचित वर्गो के उत्थान के लिए निः स्वार्थ भाव से सफल कार्य किए इस कारण देश के वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी उपाध्याय के विचारों से प्रभावित होकर निरंतर अंत्योदय विकास योजनाएँ तथा आत्म-निर्भरता की दिशा में बहुत ही उल्लेखनीय व सराहनीय कार्य कर रहे है जिससे पिछडे, गरीब व वंचित वर्गो की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थिति में आमूल चूल परिवर्तन आया है, जिससे आज इन क्षैत्रों में सड़क बिजली, पानी, स्वास्थ्य सुविधाएँ जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति संभव हो पाई है जिससे आज आम व्यक्ति भी अपने परिवार को उचित सुख-सुविधाऐं व निःशुल्क शिक्षा के माध्यम से अपना सर्वांगीण विकास कर पा रहा है। साथ ही वर्तमान परिदृश्य में केन्द्र सरकार के द्वारा सम्पूर्ण देश में निरन्तर विकासात्मक कार्यो का संचालन किया जा रहा है, जिससे देश के पिछड़े हुए राज्यों में शासकीय योजनाओं के माध्यम से लोगो के जीवन स्तर को सुधारने के प्रयास किए जा रहे है।[8] प्रमुखता से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों पर अधिक बल दिया जा रहा है ताकि पं. दीनदयाल उपाध्याय के उद्धेश्यों को पूरा किया जा सके और आम जनता एकात्मक मानववाद की विचारधारा से ग्रामीण लोगों को आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर बनाना चाहते थे। इस दिशा में निरन्तर प्रयासरत है जिसके लिए केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा संचालित विभिन्न विकास योजनाएँ जो इस प्रकार है:-

1. दीनदयाल अंत्योदय योजना - राष्ट्रीय आजिविका मिशन (NRLM) (2016) द्वारा जून 2011 में स्वर्ण जयंति ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY) शुरू की गई।
2. दीनदयाल अंत्योदय उपचार योजना।
3. दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना।
4. अन्नपूर्णा योजना।
5. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन।
6. प्रधानमंत्री आवास योजना।
7. अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत आर्थिक सहायता ।

8. स्किल इंडिया मिशन (28, अगस्त 2014) युवाओं में कौशल विकास ।
9. स्वच्छ भारत मिशन (2 अक्टुबर 2014)
10. बेटी बचाओं, बेटी पढ़ाओं (22 जनवरी 2015) – इस योजना का लक्ष्य लड़कियों को पढ़ाई के माध्यम से सामाजिक तथा वित्तीय तौर पर आत्म-निर्भर बनाना है।
11. अमृत योजना (25 जून 2015)
12. ग्रामोदय से भारत उदय (14 अप्रेल 2016) देश में सही विकास के लिए गाँवों का विकास करने पर बल देना।
13. प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना (9 मई, 2015)
14. उक्त शासन की योजनाओं के माध्यम से गरीब व वंचित वर्गो के सामाजिक और आर्थिक उत्थान में सर्वाधिक भागीदारी सूनिश्चित हो रही है, जिसके कारण यह लोग अपना व अपने समाज तथा देश के विकास में भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे है, जिससे आज देश लगातार बहुमुखी विकास की और बढ़ रहा है।[10]

उक्त तथ्यों के आधार पर वर्तमान परिदृश्य में स्थानीय स्वशासन से गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में पं. दीनदयाल उपाध्याय के उद्देश्यों की प्रासंगिकता का पता चलता है तथा स्वतंत्रता के बाद से भारतीय राजनीति का केन्द्र बिन्दु ग्रामीणों का आर्थिक विकास रहा है जिसमें गरीबी और बेरोजगारी दूर करने के लिए कार्यक्रमों को उच्च प्राथमिकता दी गई है और सरकार द्वारा ग्रामीणों के उत्थान के लिए बेराजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस दिशा में पं. दीनदयाल उपाध्याय एक मजबूत और सशक्त भारत चाहते थे। वे एक समावेशी विचारधारा के समर्थक थे जो एकात्मक मानववाद की विचारधारा से ग्रामीण लोगों से आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर बनाना चाहते थे। आज इन्हीं विचारों को आगे बढ़ाते हुए सरकार द्वारा ग्रामीण क्षैत्रों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तरीके से भारतीय संस्कृति का एकीकरण पर बल दिया जा रहा है साथ ही वर्तमान में ग्रामीण क्षैत्रों में स्थानीय स्व-शासन से गरीबी और बेराजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों में विशेष रूप से ग्रामीण क्षैत्रों की आर्थिक कमजोरियों को दूर करते हुए अपनी मजबूत कृषि की दिशा में विकास कार्य निरंतर किए जा रहे है विशेषकर पंचायतों ने बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है जैसे गाँवों में तालाब सड़क, बिजली की पर्याप्त व्यवस्था, स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा, कुटीर उद्योग, राशन व्यवस्था, मनरेगा जैसे महत्वपूर्ण कार्यो के माध्यम से ग्रामीण जनों को रोजगार भी दिया जा रहा है जिससे ग्रामीण जनों का सर्वांगीण विकास सम्भव हुआ है और वे वर्तमान में भारत शासन के आत्मनिर्भरता अभियान में सक्रिय भूमिका का निर्वहन कर रहे है।

**संदर्भ सूची**:-


1. द्विवेदी संजय – 'भारतीयता का संचारक' (पं. दीनदयाल उपाध्याय)
2. दीनदयालय उपाध्याय (2016) – ''सम्पूर्ण वाड्मय'', प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली
3. दीनदयालय उपाध्याय (2015) दो योजनाएँ (P.B.); प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली।
4. दैनिक भास्कर समाचार पत्र 25 सितम्बर 2016
5. w.w.w.ajtak.com
6. http/www.jagran.com
7. कलवार सुगनचन्द्र एवं तेजराम मीणा (2001); निर्धनता उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास
8. नई दुनिया 25 सितम्बर 2022
9. कुरूक्षेत्र (मार्च 2021)
10. पत्रिका: 25 सितम्बर, 2022

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# वंचितों के लिए समावेशी शिक्षा : चिंताएं, चुनौतियां तथा उनकी भावी नीतियाँ

**कल्पेश व्यास**
**प्रो. ममता गुप्ता**

1. शोधार्थी, जे. एस. विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद, उ. प्र.
2. डीन (शिक्षाशास्त्र), जे. एस. विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद, उ. प्र.

**सारांश :**–परिवर्तन की किसी की प्रक्रिया को मिश्रित प्रयासों या जाति/जनजाति, लिंग और अंतर–वर्गीयता पर सावधानी से गौर करना होगा। दलित और जनजातीय लड़कों व लड़कियों के लिए, विद्यालय ऐसा होना चाहिए, जो उन्हें उनके ऐतिहासिक पूर्ववृत्तों और किसी समुदाय विशेष जन्म लेने की वजह से मिले अभावों से मुक्ति दिलाए। विद्यालय और समाज, दोनों को इन समुदायों के बच्चों के प्रति समावेशी, न्यायोचित और निष्पक्ष रवैया अपनाने की आवश्यकता है, ताकि भारतीय समाज सही मायनों में ऐसा लोकतांत्रिक समाज होने का दावा कर सके, जहां सभी नागरिकों से बराबरी का व्यवहार होता है

**प्रस्तावना :**–देश नई शिक्षा नीति को अपनाकर आगे बढ़ने के लिए तत्पर है। विशेषज्ञों से लेकर आम जनता तक सबसे महत्वपूर्ण सुझाव मांगा गया। मन में स्वाभाविक ही प्रश्न खड़ा होता है कि ऐसा क्यों करना पड़ रहा है? क्या अभी तक की हमारी जो शिक्षा नीति थी, वह गलत थी या क्या वह नीति आज के समय के अनुकूल नहीं रही? क्या समय बदलने से शिक्षा नीति का बदलना भी आवश्यक हो जाता है? क्या शिक्षा समय सापेक्ष होती है? प्रश्न यह भी है कि क्या शिक्षा का स्वरूप समय के साथ परिवर्तनीय है? इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढने जाएं तो एक और प्रश्न मिलता है कि आखिर हम शिक्षा कहते किसको हैं?

सबसे पहले भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय से यदि शिक्षा की परिभाषा जानने की कोशिश की जाए तो उसकी वेबसाइट पर प्रारंभिक शिक्षा के बारे में पहली ही पंक्ति में कहा गया है कि, हमारे गणतंत्र के आरंभ से ही हमने हरेक को समान अवसर प्रदान करने की बात कही है। लोकतंत्र के सामाजिक तंतुओं को मजबूत बनाने में वैश्विक प्रारंभिक शिक्षा का महत्व स्वीकार किया था। इस पंक्ति में दो–तीन बातें महत्वपूर्ण हैं। पहली बात है कि शिक्षा के लिए एक विशेषण प्रयोग किया गया है वैश्विक। यानि कि जो शिक्षा भारत में दी जा रही है, वह वैश्विक शिक्षा है। वैश्विक शब्द का प्रयोग एक अर्थ में यह सुनिश्चित करता है कि वह चीज भारत की न हो, विदेश से आयातित हो। जो जो शिक्षा हम अपने देश में देना चाहते हैं, उसका मूल स्वर ही भारतीय नहीं है। वह आयातित है। दूसरी बात कही गई है, लोकतंत्र को मजबूत बनाने में शिक्षा की सामाजिक भूमिका के बारे में। यानि देश के बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा केवल लोकतंत्र को मजबूत बनाने के लिए है। अंत में तीसरी बात कही गई है शिक्षा हर किसी को समान अवसर दिए जाने की।

इसी वेबसाइट पर दो–तीन और भी स्थानों पर इस बात को दोहराया गया है कि देश में दी जा रही शिक्षा का मूल उद्देश्य संविधान में वर्णित समाजवाद, सेकुलरवाद और लोकतंत्र के लक्ष्य को पाने के लिए लोगों की राष्ट्रीय एकात्मता, वैज्ञानिक स्वभाव और स्वाधीन मस्तिष्क तैयार करना है। साथ ही सामाजिक आर्थिक संतुलन स्थापित करना भी इस शिक्षा का एक उद्देश्य है। इस प्रकार हम पाते हैं कि आज देश में दी जाने वाली शिक्षा का उद्देश्य पूरी तरह राजनीतिक है। इस अर्थ में यदि हम कहें कि आज हमें अपनी शिक्षा नीति की समीक्षा करने की आवश्यकता है, तो यह बिल्कुल ही सुसंगत बात है। दुर्भाग्यवश यह बात सच नहीं है।

शिक्षा वह साधन है, जिसके माध्यम से हमारे जैसे आधुनिक समाज में व्यक्ति और वर्ग सामाजिक परिवर्तन लाते हैं। यह सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण का भी माध्यम है, जो सामान्यतः पदानुक्रम रूप से व्यवस्थित है और जहां सर्वत्र असमानताएं व्याप्त हैं। भारतीय समाज में, जो अनिवार्य और ऐतिहासिक रूप से जातीय आधार पर संरचित है, जहां सामाजिक असमानताएं प्राथमिक तौर पर जातीय आधार पर बनती और नए सिरे से पनपती रहती हैं। आर्थिक साधनों, सामाजिक हैसियत, राजनीतिक भागीदारी और शैक्षिक अवसरों के संदर्भ में कुछ जातिया विशेषाधिकार प्राप्त हैं और कुछ नहीं हैं। अनुसुचित जातियों जैसी जातियां, जो विशेषाधिकारों से बंचित हैं, वे परंपरागत पेशेवर वर्गीकरण के सबसे निचले पायदान पर हैं और उन्हें विशेषकर ग्रामीण समाज में आमतौर पर समाज की स्थानिक एवं सामाजिक सीमाओं भी से दूर रखा जाता है। इसी तरह, मोटे तौर पर भारतीय समाज में हाशिए पर रहा एक अन्य वर्ग अनुसूचित जातियां हैं, जो भौगोलिक रूप से अलग–थलग, तथाकथित 'व्यवस्थित', 'मुख्यधारा', 'सभ्य' समाज से दूर जंगलों, पहाड़ों और दुर्गम इलाकों में अपनी अनोखी संस्कृतियों, धार्मिक पद्धतियों, भाषाओं और जीवन शैलियों के साथ रहती हैं। जहां एक ओर इन वर्गों का जीवन भारतीय समाज के अन्य सामाजिक वर्गों से भिन्न है, वहीं उनके जीवन में आस–पास की प्रकृति के साथ एक अनोखी समकालिकता भी है। हालांकि भौगोलिक अलगाव के कारण विकसित समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में इन वर्गों की भागीदारी भी असमान रही है।

इसके परिणामस्वरूप, ये जातियां और जनजातियां कई दशकों और सदियों तक सामाजिक–आर्थिक विकास के हाशिए पर रही हैं और

पराधीन व वचित जीवन बिताने को बाध्य रहीं हैं। हालांकि स्वाधीनता के पश्चात, भारत को लोकतांत्रिक समाज बनाने, सभी नागरिकों को उनको सामाजिक पहचान और उनके वर्ग की परवाह किए बगैर, समान अधिकार प्रदान करने से, जाहिर तौर पर शिक्षा सहित सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में उनकी भागीदारी की स्थिति में सचमुच आमूलचूल बदलाव आया है। हालांकि ऐतिहासिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों की तुलना में समाज और शैक्षिक क्षेत्र में इन वगों की समावेशिता का स्तर भिन्न रहा है।

**मुद्दे**:-जहां एक ओर, इन वर्गों ने शिक्षा के क्षेत्र में कुछ हद तक प्रगति हासिल की है, वहीं वे कुछ अन्य संदभों में पीछे छूट गए हैं, जिसकी वजह से वे शैक्षणिक, विकासात्मक और सामाजिक प्रक्रिया में परिवर्तन की प्रक्रियाओं में निरंतर हाशिए पर बने हुए है, इस तरह मुख्य धारा में लाने के लिए समाज में बराबरी पर लाने की दिशा में काफी काम करना बाकी है। शिक्षा के सभी स्तरों में से एक क्षेत्र में, जहां इन वर्गों ने जबरदस्त प्रगति दर्शाई है वह है दाखिला लेने के संदर्भ में।

प्राथमिक शिक्षा में, सुनियोजित और औपचारिक शिक्षा की प्रथम कक्षा के स्तर पर, नामांकन विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के समान ही है लेकिन पांचवीं कक्षा तक आते-आते, इनकी संख्या सिकुड़ती प्रतीत होती है। उदाहरण के तौर पर राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (एनयूईपीए) द्वारा प्रकाशित भारत सरकार की रिपोर्ट सबके लिए शिक्षा: गुणवत्ता और समानता की ओर दर्शाती है कि प्राथमिक शिक्षा में दाखिला लेने वाले अनुसूचित जाति के बच्चों की संख्या एक दशक में 24.1 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई। इसी तरह, इसी दशक में प्राथमिक शिक्षा में दाखिला लेने वाले अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की संख्या 33.6 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई। उच्च प्राथमिक स्तर पर भी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों दोनों ने महत्वपूर्ण प्रगति शिक्षा में नामांकन के रूप में हुआ।

दिलचस्प बात यह है कि रिपोर्ट में अनुसूचित जातियों में लड़कियों के सकल नामांकन अनुपात (जी0ई0आर0) में लड़कों की तुलना में वृद्धि दर्शायी गई है, जो अनुसूचित जाति की लड़कियों के लिए अनुसूचित जाति के लड़कों से काफी अधिक है (अनुसूचित जाति की लड़कियों के लिए 48.6 और अनुसूचित जाति की लड़कियों के लिए 18.8 प्रतिशत)। इसका आशय है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के माता-पिता और समुदाय लड़के और लड़कियों दोनों का दाखिला प्राथमिक स्कूल (प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक दोनों) कक्षाओं में करवा रहे हैं और उनमें बच्चों को साक्षर एवं शिक्षित बनाने की बेताबी प्रदर्शित हो रही है। इस तरह, दाखिलों, सकल नामांकन अनुपात और प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर विशेषकर दाखिला लेने वाली लड़कियों की संख्या में वृद्धि सचमुच स्वागत योग्य घटना है और हम सभी के लिए खुशी की बात है।

कुछ विश्लेषक यह दावा कर सकते हैं कि पढ़ाई अधूरी छोड़ने वालों की तादाद इतनी ज्यादा होने के बावजूद, बीते वर्षों में इस रुझान में सचमुच कमी आई है। हालांकि इस दलील और स्पष्टीकरण से, प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण का समग्र लक्ष्य प्राप्त करने में कोई मदद नहीं मिलेगी, इस प्रकार यह देश के लिए, अपने समस्त बच्चों के लिए बुनियादी शिक्षा के प्रावधान का दावा करने की दिशा में एक प्रमुख रुकावट बना रहेगा। बच्चों के स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने और पढ़ाई जारी रखने का मामला तब और ज्यादा ध्यान आकृष्ट करता है, जब वे शिक्षा के उच्चतर स्तरों पर पहुंच चुके होते हैं। इसका आशय यह है कि बच्चे और उनके माता-पिता स्कूल में दाखिला लेने तक तो उत्साहित रहते हैं लेकिन शिक्षा के उपयुक्त स्तर पर पहुंचने तक स्कूल में पढ़ाई जारी रखने को लेकर वे ज्यादा उत्साहित नहीं होते।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातीय घरों से आने वाले बच्चों के लिए, इसका आशय है वे ज्यादातर ऐसे परिवारों से होते हैं, जो निरक्षर अथवा बहुत कम पढ़े लिखे होते हैं और इस तरह वे शिक्षा और देश में हो रहे विकास से लाभान्वित होने के संदर्भ में हाशिए पर अथवा सुविधाहीन स्थिति में बने रहेंगे। दरअसल, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के लोगों की तकलीफें और सुविधाहीनता संभवत: और बढ़ जाए. क्योंकि अन्य सामाजिक वर्ग साक्षरता और शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक रूप से लाभ की स्थिति में होने के कारण शिक्षित रोजगार बाजार में खुल रहे नए क्षेत्रों से लाभ उठाने के लिए पहले से ही काफी तेज रफ्तार से आगे बढ़ रहे हैं। इस प्रकार, एक तरह से. सुविधाहीनों के शिक्षा प्राप्त करने की स्थिति में मामूली अथवा नगण्य सुधार होने के परिणामस्वरूप समाज में असमानताएं गहरा गई हैं।

**चुनौतियां**:-अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के लिए, ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड (ओबीबी), राष्ट्रीय साक्षरता अभियान (एनएलसी), जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) और सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) जैसे कदमों की बदौलत स्कूलों तक पहुंच वास्तविक और सामाजिक रूप से काफी हद तक संभव हो सकी है लेकिन स्कूल उन्हें अपनी पढ़ाई जारी रखने और कम से कम शिक्षा के बुनियादी स्तर तक की पढ़ाई पूरी करने के लिए आकर्षित नहीं कर पाते। निश्चित रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों को स्कूलों तक वास्तविक पहुंच पहले से कहीं ज्यादा अब कायम हुई है लेकिन स्कूल के सभी बच्चों, खास तौर पर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के लिए समान शैक्षिक अनुभव की जगह होने की स्थिति में ज्यादा बदलाव नहीं आया है। गरीबी, सामाजिक वर्ग, जाति और सामाजिक पहचान के ढांचे ऐसे रूप से फिर से निर्मित हुए हैं कि उन्होंने विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि के बच्चों, शिक्षकों और बच्चों तथा शिक्षकों और बच्चों के माता पिता के बीच असमानताओं की खाई को और चौड़ा कर दिया है। इसके साथ-साथ शिक्षक की उदासीनता और भेदभावपूर्ण रवैया इन समुदायों के बच्चों को स्कूल से दूर रखता है और स्कूल को सीखने के लिए प्रतिकूल जगह बनाता है।

अध्ययनों से यह प्रतीत होता है कि शिक्षक इन समुदायों के बच्चों के प्रति भेदभावपूर्ण और उन्हें बहिष्कृत रखने का रवैया अपनाते हैं और वे समझते हैं कि इन समुदायों के बच्चे सीखने और शिक्षा प्राप्त करने की दृष्टि से बेवकूफ़ अयोग्य और अनुपयुक्त हैं और वे परंपरागत तुच्छ कार्यों को अंजाम देने अथवा जंगलों और पहाड़ों के आसपास रहने के लिए ही उपयुक्त हैं। कुछ शोधकर्ताओं ने तो यहां तक प्रदर्शित किया है कि समझा जाता है कि जनजातीय बच्चे आलसी, गंदे और असभ्य हैं और इसलिए वे सीखने के लायक नहीं है। अध्ययनों ने यह भी प्रमाणि ात किया है कि अस्पृश्यता और सामाजिक एवं भौगोलिक अलगाव के विचार सामान्य तौर पर समाज में ही नहीं, बल्कि स्कूलों में भी फिर से पनप चुके हैं। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों के बच्चों के प्रति सामाजिक भेदभाव और उन्हें बहिष्कृत रखने के स्वैये के अनुभव, इन वर्गों और अन्य गरीब और सुविधाहीन वर्गों के बच्चों की पढ़ाई जारी रखने के उद्देश्य से बनाई गई मध्यान्ह भोजन योजना के कार्यान्वयन के समय बखूबी दर्ज किया जा चुका है।

दिलचस्प बात यह है, कि भेदभावपूर्ण व्यवहार की रिपोर्ट्स सिर्फ

ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि ऐसे मामले शहरों में भी सामने आते रहे हैं। शोधों से यह स्पष्ट हो चुका है कि सामाजिक अलगाव सामान्य तौर पर शहरी समाज में और खासतौर पर शहरी स्कूलों में भी मौजूद है। इस तरह, सामाजिक भेदभाव गुमनाम और अवैयक्तिक सामाजिक क्षेत्रों में मोटे तौर पर फिर से उभर चुका है. हालांकि इसकी प्रकृति और स्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले भेदभाव से भिन्न है।

**भावी योजना**:-बच्चों की स्कूली शिक्षा जारी रखने और उन्हें स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने से रोकने के लिए, सरकारों, स्कूलों और समुदायों के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वे समस्त बच्चों, विशेषकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातीय पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों को स्कूल में भेदभावरहित वातावरण उपलब्ध कराएं। यदि स्कूल इन बच्चों के अरुचिकर और प्रतिकूल स्थान बना रहेगा, तो ऐसे में स्कूली शिक्षा में इन बच्चों की समग्र शैक्षिक भागीदारी की दिशा में बहुत करना बाकी रह जाएगा, जिससे असमानताओं की खाई और भी चौड़ी हो जाएगी, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है।

इसलिए अब जरूरत इस बात की है कि महज शिक्षा के प्राथमिक और बाद के स्तरों पर दाखिला लेने तक सीमित न रहकर उनसे आगे बढ़ा जाए। स्कूल जैसे ही उल्लास और व्यापक रूप से सीखने की जगह बनेगा, वह इन वर्गों के बच्चों को शिक्षा के उच्च स्तरों तक पहुंचने में सहायक होगा, जिससे उनका शिक्षित श्रम बाजार में समावेश सुनिश्चित हो सकेगा। हम पहले ही देख चुके हैं कि है।

दिव्यांग, पिछड़े और अनुसूचित जनजातियों के लोग पहले से कहीं अधिक तादाद में सीमाएं तोड़कर उच्च शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश कर रहे हैं और काफी अधिक मांग वाले विविध विषयों में कदम रख रहे हैं, जिससे आखिरकार भारतीय समाज की पेशेवर और आर्थिक संरचनाओं में बदलाव आएगा, जिसकी बदौलत देश के समग्र विकास में योगदान दे सकने वाला कुशल और शिक्षित व्यवसायियों का समूह तैयार होगा।

समावेशी शिक्षा के लिए लड़कियों को साथ जोड़ने और उनकी स्कूल तक पहुंच संभव बनाने के लिए विशेष प्रयास करना एक महत्वपूर्ण चुनौती है, क्योंकि अपने वर्ग के लड़कों की तुलना में ये लड़कियां जाति/जनजाति, जेंडर और सामाजिक वर्ग के संदर्भ में दोगुना या तीन गुना ज्यादा सुविधाहीन हैं।

इन समुदायों की लड़कियां जाति/जनजाति और सामाजिक वर्ग के सदंर्भ में सुविधाहीन हैं, जिससे उनका शिक्षा से बहिष्कृत रहना और ज्यादा बढ़ जाता है। इसलिए परिवर्तन की किसी की प्रक्रिया को मिश्रित प्रयासों या जाति/जनजाति, जेंडर और सामाजिक वर्ग की अंतर-वर्गीयता पर सावधानी से गौर करना होगा। दलित और जनजातीय दोनों के लड़कों व लड़कियों के लिए, स्कूल ऐसा होना चाहिए, जो उन्हें उनके ऐतिहासिक पूर्ववृत्तों और किसी समुदाय विशेष जन्म लेने की वजह से मिले अभावों से मुक्ति दिलाए। स्कूल और समाज, दोनों को इन समुदायों के बच्चों के प्रति ज्यादा समावेशी, न्यायोचित और निष्पक्ष रवैया अपनाने की आवश्यकता है, ताकि भारतीय समाज सही मायनों में ऐसा लोकतांत्रिक समाज होने का दावा कर सके, जहां सभी नागरिकों से बराबरी का व्यवहार होता है।

**संदर्भ सूची**:-


1. भारत की जनगणना-2011, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2012
2. शर्मा, राकेश, भारत में महिला साक्षरता - एक परिदृश्य (लेख), प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, 2007
3. पालीवाल, सुभाषिणी, भारत में महिला शिक्षा और साक्षरता, कल्याणी, शिक्षा परिषद्, दिल्ली।
4. पांथरी, प्रो0 शैलेन्द्र व सिंह, डॉ0 अमरेंद्र प्रताप, आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, 2000
5. योजना आयोग अंक जून 2016

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# श्रीरामभद्राचार्य जी कृत 'श्रीनीराजनवलि' में देवत्व का चित्रण और उनकी आध्यात्मिक दृष्टि

**सुरेश चंद मीना**
**डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल**

1. शोधार्थी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूंदी, संबंद्ध – कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान
2. आचार्य, शोधार्थी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूंदी, संबंद्ध – कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

**परिचय:**–इस शोध पत्र का उद्देश्य श्रीरामभद्राचार्य की रचनाओं के माध्यम से उनके दृष्टिकोण और भगवान् के विभिन्न रूपों के चित्रण को समझना है। श्रीरामभद्राचार्य का काव्य भक्ति साहित्य का अद्वितीय उदाहरण है, जिसमें उन्होंने भगवान श्रीराम, शिव, कृष्ण और अन्य देवताओं के दिव्य रूपों का विस्तृत वर्णन किया है। उनकी रचनाओं में न केवल इन देवताओं के गुणों और स्वरूप का व्याख्यान किया गया है, बल्कि भक्ति, धर्म और आध्यात्मिकता के उच्चतम आदर्शों का भी उद्घाटन किया गया है। उनका लेखन भक्तिपंथ के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है, जो भावनात्मक, धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से एक गहरी समझ प्रदान करता है।

**1. श्रीराम का चित्रण:**–श्रीरामभद्राचार्य की रचनाओं में श्रीराम का चित्रण केवल एक आदर्श पुरुष के रूप में नहीं किया गया, बल्कि उन्हें जीवन के प्रत्येक पहलू में धर्म, सत्य और न्याय का प्रतीक माना गया है। श्रीराम का जीवन संघर्षों और बलिदानों से भरा हुआ था, लेकिन उन्होंने कभी भी अपने कर्तव्यों से मुंह नहीं मोड़ा। उनके प्रति भक्ति का संदेश इस रचना में अत्यधिक गहरे भाव से व्यक्त किया गया है। श्रीराम को 'नवमेघश्यामं' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो परमात्मा का आदर्श रूप है और उनके जीवन में कोई भी दोष नहीं है।

(श्रीराम का आदर्श जीवन):

वन्दे भागवतं प्रभु वन्दे भागवतम्। वेदकल्पतरुसुफलं, वेदव्यासकृतम्।
प्रणमाणि त्वां प्रणमामि।।

इस श्लोक में श्रीराम के आदर्श जीवन की नींव, वेदों और धर्म के उच्चतम सिद्धांतों पर आधारित है। यहाँ भगवान श्रीराम को आदर्श रूप में देखा गया है, जो वेदव्यास द्वारा रचित वेदों के अनुरूप होते हुए सत्य, धर्म और आदर्शों के पालनकर्ता थे। उनका जीवन सम्पूर्ण संसार के लिए एक आदर्श था। वे हर कार्य में सत्य, न्याय और धर्म का पालन करते हुए सच्चे नेतृत्व की मिसाल प्रस्तुत करते थे।

**2. श्रीराम के जीवन के सिद्धांत:–**

विशद भगवदावतारं, रामगुणारामम्। प्रभु रामगुणारामम्,
पुण्यश्लोक सुकीर्त्या, पूरितजनकामम्। प्रणमाणि त्वां प्रणमामि।।

यह श्लोक श्रीराम के जीवन में उनके गुणों और उनके नेतृत्व का उत्सव है। श्रीराम को 'रामगुणाराम' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो उनके हर कार्य और विचार में गुण और आदर्श का प्रतीक है। वे पुण्य प्रतीक हैं, उनका हर कार्य सत्य, धर्म और अच्छाई का संवर्धन करता था। वे न केवल आदर्श राजा थे, बल्कि उन्होंने समाज को एक दिशा दी, जिसमें हर व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए धर्म का पालन करना था।

**2. शिव का दिव्य रूप:**–'श्रीनीराजनावलि' शिव के रूप में श्रीरामभद्राचार्य ने न केवल भगवान् शिव के गुणों का वर्णन किया, बल्कि उनके द्वारा दी जाने वाली शरण और मुक्ति को भी महत्वपूर्ण माना। शिव को 'गौरीशं' और 'नीलकण्ठ' जैसे शब्दों से व्यक्त किया गया है, जो उनकी दिव्यता और अतुलनीय रूप को दर्शाते हैं। शिव को 卐भवनिधिपतितमनीशं卐 के रूप में चित्रित किया गया है, जो उनके सभी भक्तों के लिए शरणदाता और दुखों का नाश करने वाले हैं। यथा:–

वन्दे गौरीशं प्रभु वन्दे गौरीशम्। नीलकण्ठबिबुधेशं गुणगणवारीशम्।।
जय देव जय महादेव।। गंगाधरशशिशेखरशङ्करकामारे।
प्रभु शंकरकामारे द्य

यहाँ भगवान् शिव के अद्वितीय रूप का विस्तृत वर्णन है। यहाँ पर भगवान् शिव को 'गौरीशं' के रूप में पूजा जा रहा है, जिसका अर्थ है, 'गौरी के पति' या 'शिव'। उन्हें 'गंगाधर', 'शशिशेखर' और 'नीलकण्ठ' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो उनके दिव्य रूपों का प्रतीक हैं। भगवान शिव को 'गुणगणवारीश' कहा गया है, अर्थात वे गुणों के अधिपति हैं। उनका जीवन शरणागत वत्सल और समस्त देवताओं का रक्षक है। यह श्लोक भगवान शिव के विविध रूपों, उनके दिव्य गुणों और उनके ब्रह्मांडीय महत्व को प्रदर्शित करता है।

**2. शिव के शक्तिशाली रूप का चित्रण**

भवनिधिपतितमनीशं मामव त्रिपुरारे। जय देव जय महादेव।
रजतकुन्दशशिसुन्दर गौरसतीस्वामिन्।। प्रभु गौरसतीस्वामिन्।।

श्रीनीराजनवलि के इस उद्धरण में भगवान शिव की असीम शक्ति और उनके महिमाओं का गान करता है। उन्हें 'त्रिपुरारे' के रूप में संबोधित किया गया है, जो 'त्रिपुरासुरों के संहारक' के रूप में जाने जाते हैं। 'गौरसतीस्वामिन्' से उनका नाम लिया गया है, जो दर्शाता है कि वे देवी गौरी के स्वामी हैं। श्लोक में भगवान शिव के रजत, चन्द्रमणि की सुंदरता और उनके शक्तिशाली रूप का जिक्र किया गया है। यहाँ भगवान शिव की महिमा और उनकी अपार शक्ति का स्पष्ट चित्रण किया गया है।

**3. कृष्ण का दिव्य स्वरूप:**–'श्रीनीराजनवलि' में भगवान्कृष्ण के रूप में, श्रीरामभद्राचार्य ने उनके जीवन और उनके कार्यों को प्रेम, करुणा और आध्यात्मिकता के रूप में प्रस्तुत किया है। कृष्ण को 'गोपीजनस्वामिन' और 'वृन्दावनचारिन्' के रूप में वर्णित किया गया है, जो केवल प्रेम और आनंद के प्रतीक हैं। कृष्ण का जीवन एक अनंत प्रेम की लीला है, जो उनके भक्तों के हृदय

में स्थायी रूप से निवास करती है। उनके द्वारा किए गए कार्यों को भक्ति और प्रेम का सर्वोत्तम रूप माना गया है। यथा:-

वन्दे गोपालं प्रभु वन्दे गोपालम्। नन्दयशोदाबालं कंसासुरकालम्।
जय कृष्ण जय श्रीकृष्ण।।

'श्रीनीराजनवलि' के इस उद्धरण में भगवान श्री कृष्ण के बाल रूप को दर्शाता है। यहाँ श्री कृष्ण को 'गोपाल' (गोपों के स्वामी) और 'नन्दयशोदाबाल' (नन्द और यशोदा के पुत्र) के रूप में पूजा जा रहा है। उनका रूप बालक रूप में निर्दोष और नटखट है, जो कंस जैसे असुरों को भी परास्त करता है। 'कंसासुरकाल' का उल्लेख उनके शत्रु कंस के विनाश के संदर्भ में है, जो श्री कृष्ण के सामर्थ्य और धर्म की रक्षा के प्रतीक हैं। और:-

वासुदेव मधुसूदन, गोपीजनस्वामिन्। प्रभु गोपीजनस्वामिन्।
सजल पयोद मनोहर, हृदयान्तर्यामिन्।। जय कृष्ण जय श्रीकृष्ण।।

यहाँ श्री कृष्ण के उच्चतम रूपों का वर्णन करता है। 'वासुदेव' और 'मधुसूदन' के रूप में श्री कृष्ण ब्रह्मा के अवतार और असुरों के संहारक हैं। 'गोपीजनस्वामिन्' उन्हें गोपियों के स्वामी के रूप में सम्मानित करता है, जो उनकी प्रेम और समर्पण के प्रतीक हैं। 'सजल पयोद मनोहर' के माध्यम से श्री कृष्ण के रूप में सुंदरता और आनंद का प्रतिबिंब प्रस्तुत किया गया है, जो मनुष्य के हृदय में शांति और प्रेम का संचार करते हैं। इस श्लोक में उनके दिव्य रूप की ओर संकेत किया गया है, जो सबको आनंदित और पवित्र करता है।

यह श्लोक कृष्ण की प्रेममूर्ति को प्रकट करता है, जो जीवन के कष्टों से पार करने के लिए भक्ति का सर्वोत्तम मार्ग है। कृष्ण के चरणों में समर्पण से जीवन में सुख और शांति की प्राप्ति होती है।

**4. श्रीरामभद्राचार्य की भक्ति और आध्यात्मिक दृष्टि:-** 'श्रीरामभद्राचार्य' जी की भक्ति न केवल भक्ति साहित्य का एक अंग है, बल्कि यह एक गहरे आध्यात्मिक संबंध का परिणाम है। उनके स्तोत्र काव्य में भक्ति के रूप में भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना व्यक्त की गई है। उनका विश्वास था कि भगवान केवल हमारे आराध्य नहीं हैं, बल्कि हमारे जीवन के हर पहलू में उनका अस्तित्व है। उन्होंने भक्ति को केवल पूजा और अनुष्ठान तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे एक आंतरिक यात्रा के रूप में देखा, जिसमें आत्मा भगवान से जुड़ने की कोशिश करती है।

**भक्ति और समर्पण:-**

**1. श्रीराम के प्रति भक्ति और समर्पण:-**श्रीरामभद्राचार्य जी ने भगवान् श्रीराम की भक्ति को सर्वोपरि माना है। वे श्रीराम को पूर्ण ब्रह्म, निष्काम, और भक्तों के शोक और दु:ख को समाप्त करने वाला मानते हैं।

भक्ति: 'वन्दे श्रीरामं प्रभु वन्दे श्रीरामम्' - श्रीराम के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा और समर्पण को दर्शाता है। वे श्रीराम के गुणों का बखान करते हैं, जैसे 'पूर्णब्रह्मनिष्कामं पूरितजनकामम्', और इसे एक भक्तिपथ के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

समर्पण: 'निजजनशोकविरामं ब्रीडितशतकामम्' में श्रीराम के प्रति पूर्ण समर्पण और श्रद्धा का स्पष्ट रूप से उल्लेख है। यह दिखाता है कि भक्त अपने दुखों और इच्छाओं को भगवान श्रीराम के चरणों में समर्पित करते हैं।

**2. श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति और समर्पण:-**श्रीकृष्ण की भक्ति का उल्लेख 'वन्दे गोपालं प्रभु वन्दे गोपालम्' में हुआ है, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण की दिव्यता और प्रेममय व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण के प्रति समर्पण का मुख्य स्वर उनके लीलाओं, गुणों और उनके भक्तों से प्रेम को दर्शाता है।

भक्ति: 'गोपीजनस्वामिन्' और 'मुरलीधर' जैसे शब्दों में श्रीकृष्ण की आकर्षक लीलाओं और उनके प्रेम का वर्णन किया गया है। उनका जीवन और प्रेम सदैव भक्तों को मोहक बनाता है।

समर्पण: भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम और भक्ति में कोई शर्त नहीं होती। भक्त श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पण कर पूर्ण रूप से शांति और सुख प्राप्त करते हैं, जैसे 'गोवर्धनधारिन्' और 'रासप्रिय' में उनका अपूर्व रूप दर्शाया गया है।

**3. शिव के प्रति भक्ति और समर्पण:-**शिव की भक्ति 'वन्दे गौरीशं प्रभु वन्दे गौरीशम्' में प्रकट हुई है, जिसमें भगवान शिव के परम और दिव्य रूप का वर्णन किया गया है। शिव के प्रति भक्ति में उनके शांति और विनाशक गुणों का उल्लेख किया गया है।

भक्ति: 'शंकरहिय में प्रगटानी' और 'नीलकण्ठबिबुधेशं' जैसे श्लोक शिव की असीम शक्ति और महानता को प्रकट करते हैं। शिव का रूप अर्धनारीश्वर, विनाशक, और संहारक के रूप में देखा जाता है।

समर्पण: शिव के प्रति समर्पण का भाव भी विशेष है। भक्तों का मानना है कि भगवान शिव ही उनके दुखों का निवारण करते हैं और जीवन को शिवत्व की ओर मोड़ते हैं। 'गौरसतीस्वामिन्' और 'शिवशङ्कर' में शिव के भव्य रूप और दिव्यता का उल्लेख है, जो भक्तों के लिए सदैव प्रेरणास्त्रोत होता है।

**5. काव्य की शैली और प्रभाव:-**श्रीरामभद्राचार्य की रचनाएँ काव्यशास्त्र में गहरी और संगीतमय शैली में रची गई हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली, छंद और भावनाएँ, सभी एक अद्वितीय संयोजन बनाती हैं जो पाठकों के मन में स्थायी प्रभाव छोड़ती हैं। उनके काव्य में भगवान और भक्त के बीच गहरे संबंध का चित्रण किया गया है, और यह समर्पण और भक्ति के महत्व को उजागर करता है। उनका काव्य न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से, बल्कि साहित्यिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे भक्तों को जीवन के उच्चतम सत्य की ओर मार्गदर्शन करते हैं और उन्हें आत्मा की पवित्रता और शांति के लिए प्रेरित करते हैं।

**उपसंहार:-**श्रीरामभद्राचार्य की रचनाएँ न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि उन्होंने भक्ति साहित्य को भी एक नई दिशा दी है। उनकी रचनाओं में भगवान के विभिन्न रूपों का चित्रण भक्तों को उनके वास्तविक स्वरूप को समझने और उनकी भक्ति में विलीन होने के लिए प्रेरित करता है। उनकी भक्ति और आध्यात्मिक दृष्टि का विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि भक्ति केवल पूजा और अनुष्ठान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक गहरी आंतरिक प्रक्रिया है जो आत्मा के परम सत्य तक पहुँचने का मार्ग है।

**संदर्भ सूची:-**


1. श्रीरामभद्राचार्य के भक्ति गीत और श्लोक
2. भक्ति साहित्य और धार्मिक दृष्टिकोण
3. भगवान के विभिन्न रूपों का चित्रण
4. श्रीरामभद्राचार्य के जीवन और कार्य
5. श्रीशतस्तोत्री सम्पादक डॉक्टर सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील' (श्रीतुलसीमंडल)
6. श्रीरामस्तवराजस्तोत्रम् प्रकाशक श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास आमोदवन चित्रकूट
7. श्रीजानकीजीवनशतकम् श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास आमोदवन चित्रकूट
8. श्रीरामचरितमानस सम्पादक श्रीरामानन्दाचार्य प्रकाशक अन्ताराष्ट्रिय श्रीरामचरितमानस अनुसंधान केन्द्र जगद्?गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट, उ0प्र0, भारत
9. दिनकर, डॉ0 वागीश (2008). श्रीभार्गवराघवीयम् मीमांसा. दिल्ली, भारत: देशभरती प्रकाशन.

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन की समस्याएँ

**डॉ. रोज़ी. पी. वर्गीज़**

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, केथोलिकेट कॉलेज, पथनमथित्ता, केरल

'दलित' शब्द का अर्थ भगवद् गोमंडल शब्दकोश में इस प्रकार दिया गया है–'दलित, चूर्णित, कुचला हुआ, तोड़ा हुआ, फाड़ा हुआ, कचरा हुआ, नष्ट किया गया, पीड़ित, पीसा हुआ, दबाया हुआ,भिखारी, गरीब, विकसित, खिला हुआ, हल्का, अधम।'[1] हमारे धर्म तथा सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत चतुर्थ वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह वर्ण विभाजन किया गया है। दलित साहित्य के संदर्भ में श्रीमती उर्मिला राजपूत ने बहुत ही सटीक बात कही है–'वर्णव्यवस्था द्वारा नकारे गये लोगों के प्रति मानवीय संवेदना, करुणा से द्रवित होकर उनकी विषम स्थितियों का चित्रण करना उपेक्षित, शोषित, दलित, पीड़ित और जंजीरों से जकड़ी स्थिति के प्रतिकार, प्रतिरोध और प्रतिशोध की भावना की आंदोलनात्मक सृजन शक्ति ही दलित साहित्य है।'[2] हिंदी में 'दलित साहित्य' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम डॉ. भीमराव आंबेडकर द्वारा संचालित 'दलित साहित्य सेवक संघ' के द्वारा किया गया। साहित्य में उपन्यास विधा लोकप्रिय रही है। उपन्यास ऐसी विधा है, जिसमें जीवन का व्यापक फलक प्रस्तुत होता है। उपन्यास को आधुनिक काल में मानवी जीवन का महाकाव्य माना है। उपन्यास को 'समकालीन इतिहास' भी कहा गया है। हिंदी उपन्यास साहित्य में दलित जीवन त्रासदी पर लिखने का श्रेय प्रेमचंद को दिया जाता है। प्रेमचंद की 'कर्मभूमि' और 'रंगभूमि' के पात्र जातीयता के खिलाफ लड़ते हैं। 'शेखर एक जीवनी' में छुआछूत और वर्णभेद का मार्मिक वर्णन है। मधुकर सिंह के 'सहदेवराम का इस्तीफा' में सहदेवराम चमार जमींदार माधोसिंह से संघर्ष करता है। सप्लाई विभाग का अफसर बनकर हरिजन वार्ड में रेशन की दुकान खुलवाकर दलितों को संगठित करता है, परंतु दफ्तरों में सवर्णों द्वारा उनकी फाइलें दबाना, अपमानित करना अंत में इस्तीफा देकर व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करना ही उसका श्रेय है।पांडेय बेचन शर्मा उग्र की 'बंधुआ की बेटी' और 'मनुष्यानंद', निराला के 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'निरुपमा' और 'चतुरी चमार', चतुरसेन की 'गोली' और 'उदमस्त', अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी' और यादवेंद्र शर्मा का 'हजार घोड़े का सवार' आदि दलित जीवन की व्यथा कथा है।

मधुकर सिंह के 'सहदेवराम का इस्तीफा' में सहदेवराम चमार जमींदार माधोसिंह से संघर्ष करता है। शिवशंकर शुक्ल के 'मोंगरा' का चमार चरणदास परंपरागत धंधा छोड़कर सरकारी कर्ज लेकर मुर्गी पालने का व्यवसाय करता है। 'खारे जल का गांव' का अरविंद चमार क्रांतिकारी मोर्चा बनाकर सरपंच का चुनाव लड़ता है तथा उपभोक्ता भंडार का उद्घाटन चमार के हाथों कराता और उचित मजदूरी की मांगे करता है। 'सुबह की तलाश' का सोमेश्वर हरिजनों के लिए मंदिर खुलवाता और पाठशाला शुरु करता है। मदन दीक्षित का 'मोरी का ईंट' मेहतर जनजीवन का दस्तावेज है।जिसमें उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक झांकी चित्रित है।

**अंधविश्वास3**–मानव सामाजिक प्राणी होने के साथ–साथ संस्कृति की रक्षा करने के लिए उसका जीवन धर्मनिष्ठ बना है। इस प्रकार धर्म मनुष्य की जीवन पद्धति बनी। धर्म और अंधविश्वास का संबंध रहा है। धर्म उदात्त गुणों की शिक्षा देता है, परंतु अज्ञान, अंधश्रद्धा के कारण उस धर्म का रूप विकृत बन गया है। प्रकृति का भय, अज्ञान, कमजोर मानसिकता, जिज्ञासा के कारण अंधविश्वास बढ़ रहे हैं। उपन्यासों में दलित जीवन में स्थित अंधविश्वास पर प्रकाश डाला गया है। निराला के 'निरुपमा' में चमार, मोची जाति में स्थित राजा को भगवान का अवतार मानना, भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' में भगवान का प्रसाद खाने से कक्षा में अव्वल आना, ब्राह्मणों को दान देने से मुक्ति पाना, भोलेनाथ की अंगूठी पहनने से गड़ा हुआ धन मिलना जैसी अंधश्रद्धा है। गुरुदत्त के 'बनवासी' में नागाजाति की अंधश्रद्धा चित्रित है। साधु के शब्द को भगवान का आदर्श मानना, पति के हाथ से माँग भरनेवाली को स्वर्ग मिलना, शिवशंकर शुक्ल के 'मोंगरा' में छींक आने पर काम सफल न होना, बीमारी में बड़ी माता से प्रार्थना करना, आंख फड़कने को बुरी घटना का संकेत मानना, 'सुबह की तलाश' में पुत्रप्राप्ति के लिए महादेव को जल चढ़ाना, तालाब में भूत – प्रेत का होना, 'खारे जल का गांव' में मटके का गिरना अपशकुन मानना, 'कगार की आग' में बाबा की कृपा से पुत्रप्राप्ति होना, 'जंगल के आसपास' देवता का नाखुश होने से संकट आना, ओझाकी सहायता लेना, नारी की पवित्रता सिद्ध करने के लिए अग्नि परीक्षा लेना, झाड–फूँक से बीमारी हटाना आदि अंधश्रद्धाएँ दिखाई देती है।

**जातीय भेदाभेद**:–भारतीय समाज का आधार जाति संस्था रही है। दलितों में जातीय भेदाभेद उच्च नीचता का भाव दिखाई देता है।भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों का जीवन हीनमानकर पशुतुल्य बनाया है। इस व्यवस्था के लिए सवर्ण और हीन एक जैसे जिम्मेदार है। निराला के 'निरुपमा' में चमारों का पनघट अलग होना, चमार कुमार को होटल में जगह न मिलना, वर्णव्यवस्था के कारण नौकरी का त्याग करना, शिवशंकर शुक्ल के 'मोंगरा' में ब्राह्मण मंगलू के घर चमार चरणदास रहता है, तब मंगलू को बिरादरी खारिच करती है, जाति बाह्य कर्म करने से हल चलाने से उसे पापी माना जाता है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'जल टूटता हुआ' की हरिजन कन्या लवंगी के तेवरों में भी हमें दलित चेतना के संकेत मिलते हैं। लवंगी का भाई हतिया पार्वती नामक एक उच्च जाति की लड़की के साथ सहवास करते हुए पकड़ा जाता है, तब उच्च जाति के लोग उसकी खूब पिटाई करते हैं, तब लवंगी अपने भाई को बचाते हुए कहती है, 'क्या हुआ अगर मेरे भाई ने ब्राह्मण लड़की से भला बुरा किया? चमार का खून–खून नहीं है? ब्राह्मण

का खून ही खून है। हमारी कोई इज्जत नहीं होती क्या? बामनों की ही इज्जत होती है?'[3] 'सुबह की तलाश' मेंअछूत का नामकरण भगवान के नाम से करने को मना करना, अछूत बच्चे को पाठशाला में पीछे बिठाना, 'नाचौ बहुत गोपाल' में धार्मिक व्यक्तियों का मेहतरानियों के साथ रात में संबंध रखना, इसके बारे में वेदवती का कथन है–'यह छुआछूत का आडंबर जो हमारे समाज पर लादा गया है वह ढोंगियों और स्वार्थ लोलुप पंडे, पुरोहितों ने लादा है।'[4] यह कथन सवर्णों की मनोवृत्ति पर प्रकाश डालता है।

**जाति पंचायत**:–भारतीय समाज व्यवस्था का संबंध राजनीतिक व्यवस्था से भी रहा है। न्याय देनेवाली जाति पंचायत महत्वपूर्ण संस्था है। गांव के सभी जातियों के मुखिया गांव के बाहर, मंदिर या चौक में इकट्ठा होते और विवाह, चोरी, शोषण, कत्ल, डाका, अनैतिक, अवैध संबंध आदि पर फैसला देते, इसके कानून अलिखित परंपरागत होते हैं। प्रमुख को 'मुखिया' कहा जाता है। इसका फैसला सभी को मानना पड़ता है। आलोच्य उपन्यासों में जाति पंचायत का वर्णन मिलता है। गुरुदत्त के 'वनवासी' में नागा जाति पंचायत का वर्णन है, पुरोहित की हत्या और बिंदु के विवाह को लेकर पंचायत बुलाना, अपराधी चौधरी को 500/– रु. दंड और कबीले को भोज देना, सभी की स्वीकृति मिलना आदि। 'खारे जल का गांव' में मंदिर के पिछवाड़े में 20–22 गांवों के मुखिया अपनी समस्याएँ सुलझाने के लिए इकट्ठा होते हैं। केसरवानी जातिपंचायत 'केसरवानी महाविद्यालय' की स्थापना करती है, जो एक आदर्श कार्य कर रहा है। 'जल टूटता हुआ' में 'हरिजन की समस्या पर चर्चा करने के लिए पंचायत में ब्राह्मण, चमार, हरिजन शामिल होते हैं।'[5] यहाँ न्याय व्यवस्था के रूप में जाति पंचायत कार्य करती है। प्रारंभ में इसके फैसले मानते थे परंतु 1990 के पश्चात लिखें उपन्यासों में इसके दर्शन नहीं होते।

**आर्थिक स्थिति**:–भारतीय समाज की आर्थिकता का प्रमुख स्रोत खेती और कुटीर उद्योग है। ग्राम व्यवस्था इसकी नींव है। दलित समाज ग्राम या बस्ती से जुड़ा है। जूते बनाना, अवैध धंधे करना आदि जीविका एवं अर्थ प्राप्ति के साधन है। निराला के 'निरुपमा' का चमार कुमार द्वारा डी. लिट होने पर भी मोची का काम करना, 'भूले बिसरे चित्र' में भीखू द्वारा मजदूरी करना, 'वनवासी' में नागा द्वारा शिकार करना, 'जल टूटता हुआ' में फटे कुर्ते धोतियाँ पहनकर बच्चों का स्कूल जाना, 'मोंगरा' में चमारों द्वारा खेती करना, जूते बनाना, 'खारे जल का गांव' में चमार द्वारा डाका डालना, 'कंगार की आग' में बेनजो बजाना, 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में मेहतरों द्वारा डोलियाँ, चटाई बुनना, 'परिशिष्ट' में बाबनराम का फैक्ट्री में काम करना, ये सभी घटनाएँ परिवर्तित दलित जीवन को दर्शाती है।

**पारिवारिक स्थिति**:–परिवार सर्वकालिक, सार्वजनिक एवं आवश्यक संस्था है। दलित समाज ग्रामों का निवासी है। धन और धर्म से प्रभावित परिवार है। डॉ. महाजन मानते हैं 'आज के परिवार में रूढ़ अर्थ नहीं है।'[6] कुंवरपाल का मानना है कि 'आज कोई दीवार संयुक्त परिवार को बिखरने से नहीं रोक सकती।'[7] यहां स्पष्ट है कि आज के युग में परिवार का कार्य सीमित बना है। भारतीय समाज जीवन में परिवारविहीन की कल्पना नहीं हो सकती। अतः उसमें परिवर्तन होगा, परंतु यह संस्था नष्ट नहीं होगी। 'निरुपमा' में विजातीय विवाह परिवार, 'भूले बिसरे चित्र' में पितृसत्तात्मक परिवार,'वनवासी' में मातृसत्ता परिवार, 'आठवीं भांवर' में बहुपरिवार, 'जाने कितनी आंखें' में बहुपति–बहुपत्नी परिवार, 'शैलूश' में पितृवंशीय परिवार, 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में मातृसत्तात्मक परिवार का चित्रण हुआ है।दलित परिवार पर पुरुष प्रधान संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है। वंश रक्षा, नारी सौन्दर्य– भोग आदि के कारण बहुविवाह, बहुपत्नी परिवार बने हैं

**शिक्षा व्यवस्था**:–व्यक्ति और समाज के विकास में शिक्षा महत्वपूर्ण तत्व रहा है। शिक्षा प्रसार से देश की प्रगति का पता चलता है। आजीविका पूर्ति यही शिक्षा का सीमित लक्ष्य था। गति धीमी रही परंतु दलित समाज साक्षर बन रहा है। आंबेडकर के 'शिक्षित बनों, संघठित बनो,संघर्ष करो' इसका प्रभाव रहा। भगवतीप्रसाद शुक्ल के 'खारे जल का गांव' का अरविंद चमार हाटी में प्रौढ़ शिक्षा केंद्र खोलकर 15 लोगों को पढ़ाता है। इस कार्य में चमार विरोध करते हैं। स्वयं अरविंद लॉ परीक्षा पास हो चुका है। केसरवानी जात पंचायत शिक्षा प्रसार का कार्य करती है। 'निरुपमा' का कुमार लंदन विश्वविद्यालय में डी. लिट उपाधि प्राप्त कर लखनऊ में आकर कॉलेज में नौकरी करता है। परंतु जाति व्यवस्था से नौकरी चली जाती है, तब वह परंपरागत मोची का धंधा करता है। 'बनवासी' में ईसाई लोग धर्म प्रसार के साथ शिक्षा प्रसार के लिए पाठशाला खुलवाते हैं।

नरेंद्र वर्मा के 'सुबह की तलाश' में अमोलिडिह में कौसल्या देवी माध्यमिक स्कूल खुलवाना–बुनियादी, बागवानी शिक्षा देना, तकली चलानाआदि रूप में शिक्षा दी जाती है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की निर्गुनिया मेहतरों के उद्धार के लिए पाठशाला खोलने का प्रस्ताव रखती, स्वयं अध्यापिका बनकर 500/– रु. की सहायता देती है। वह कहती है 'अछूतों के उन्नति के लिए स्कूल खोलना चाहिए।' 'जंगल के आसपास' का दिनेश हरिजन बच्चों के मन में शिक्षा के प्रति रुची बढ़ाता है। 'शैलूष' की सावित्री नटों से कहती है–'बच्चों के शिक्षा का सारा खर्च सरकार करती है, बच्चों को पढ़ाना चाहिए।' 'परिशिष्ट' में आई.आई. टी जैसे उच्च शिक्षा संस्थान में शिक्षा लेनेवाला राम उजागर नए शिक्षित दलित युवा का प्रतीक है। कुल मिलाकर दलितों में शिक्षा के प्रति चेतना बढ़ रही है।

**निष्कर्ष**:–दलितों के जीवन तथा आर्थिक स्थिति में अब धीरे–धीरे परिवर्तन आ रहा है। परम्परागत व्यवसाय करनेवाले ग्रामीण अज्ञानी दलित है तो शहरों की ओर बढ़नेवाला, पढ़ालिखा दलित सरकारी आरक्षण से लाभान्वित है।हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन का समग्र रूप दिखाई देता है। दलित जीवन की समस्याएँ, दलितों का शोषण, दलितों के साथ किए जानेवाले अमानवीय व्यवहार आदि बातों की अभिव्यक्ति और इसके खिलाफ दलित में हुई जागृति के कारण संघर्ष करने के लिए चिंतित दलितों का भी चित्रण हिंदी उपन्यासों में प्रकट हुआ है।

**संदर्भ सूची**:–


1. भगवद् गोमंडल शब्दकोश, पृ. 4333
2. प्रज्ञा पत्रिका – डॉक्टर रामकृष्ण राजपूत, मार्च जून 1995, पृ. 91
3. रामदरश मिश्र, जल टूटता हुआ, पृ. 48
4. अमृतलाल नागर, नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ. 3
5. रामदरश मिश्र, जल टूटता हुआ, पृष्ठ 10
6. एस. बी. महाजन, आधुनिक हिंदी कहानी साहित्य में काममूलत्र संवेदना, पृ. 17
7. डॉक्टर कुंवरपाल सिंह, हिंदी उपन्यास सामाजिक चेतना, पृ. 90

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# भारतीय ज्ञान परंपरा में योग-एक सनातन परंपरा

**मयूरी शिवहरे**
**डॉ. ज्योति गोयल**

1. शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग, प्रधानमन्त्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शासकीय माधव महाविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
2. शोध निर्देशक व सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, प्रधानमन्त्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शासकीय माधव महाविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

योग एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जिसका अर्थ अनेक शब्दों में किया गया है। महर्षि पतंजलि नेयोगसूत्र के समाधिपाद के द्वितीय सूत्र में कहा है – योगश्चित्तवृत्ति निरोध:[1] अर्थात चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। योग शब्द की उत्पत्ति 'युज' धातु से मानी जाती है। जिसका शाब्दिक अर्थ है 'जोड़ना'। यह एक ऐसी विधा है जिसको प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में उतार सकता है। योग का महत्व व्यापक रूपों में मिलता है। इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। यह हठयोग, राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, मन्त्रयोग, लययोग को अपने अन्दर समेटे हुए है। गीता में योग की महिमा का वर्णन इस प्रकार से है –

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक: ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तास्माद्योगी भावार्जुन।।[2] – श्रीमदभगवदगीता

अर्थात:– योग की महिमा के बारे में क्या कहे। यहा पर श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है , हे अर्जुन ! एक योगी के अन्तर्गत ज्ञानी, कर्मी, तपस्वी के श्रेष्ठ गुण होते है। अत: तु योगी बन जा।

योग के जरिए हम मोक्ष तक पहुँच सकते है मोक्ष प्राप्ति के लिए योग साधक को योग की समस्त विधाओं का पालन करना होता है। योग साधना करते समय साधक को अपने मन को नियन्त्रित, संयमित करना होता है जिससे कि वह परमात्मा को प्राप्त कर सके। इस प्रकार आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है। महर्षि व्यास समाधि को योग मानते है। योग का वर्णन वेदो, उपनिषदो, स्मृति, पुराणों में भी किया गया है। ऋकसंहिता मण्डल 1. सूक्त 16. मन्त्र 6 में बताया गया है –

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चिन ।
स धीनां योगमिन्वति।।[3] – ऋकसंहिता

अर्थात: योग के बिना किसी भी विद्वान का कोई यज्ञकर्म सिद्ध नही होता । चित्तवृत्तियों के निरोध से व्यक्ति स्वयं को कर्मयोगी बनाता है। यहा पर यज्ञ के तीन प्रकार बतलाए गए है जो कर्म, उपासना एवं ज्ञानभेद कहलाते है। यह योग के बिना सफल नही होते है पुराणों एवं स्मृतियों में भी योग के लिए कहा गया है कि यज्ञों की सिद्धि के लिए योग परमआवश्यक है।

योग की उत्पत्ति वेदों के अनुसार हिरण्यगर्भ से मानी जाती है। हिरण्यगर्भ को जगत की अन्तरात्मा कहा जाता है। यह विष्णु के अवतारी माने जाते है। श्रुति परम्परा के अनुसार भगवन शिव को योग का आदि गुरू माना जाता है। श्रीकृष्ण ने गीता में योग परंपरा का वर्णन करते हुए बतलाया कि मेने यह योग सूर्य को, सूर्य ने मनु एवं मनु ने राजा इच्छावाकु को योगविद्या का ज्ञान दिया। इस प्रकार श्री कृष्ण ने योग का उपदेश अर्जुन को दिया। चित्तवृत्तियो के निरोध के लिए मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग, राजयोग एवं शिवयोग को प्रमुख माना गया है।

''एकाक्षरं द्वययक्षरं वा षडक्षरमथापि वा।
अष्टाक्षरं वा मोक्षाय मन्त्रयोगी जपेत् सदा ।।[4] (योगांक कल्याण)

अर्थात:– एकाक्षरत्मक 'ऊँ' मन्त्र को या द्वयक्षरात्मक 'हंस:' अथवा 'सोऽयम्' मन्त्रो को, अथवा षडक्षरात्मक 'ऊँ' नम: शिवाय: मन्त्र को अथवा अष्टाक्षरात्मक 'ऊँ हां हीं नम: शिवाय' मन्त्रो को मन्त्र क्रम के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के लिये अपना मन्त्रयोग कहलाता है।[5]

योग की उत्पत्ति के लिए कहा जाता है कि जब सभ्यता का उदय हुआ था तभी से योग अभ्यास का प्रारम्भ हुआ था। 200 ईसा पूर्व से 500 ई. में पतंजलि योग को पहली बार समग्ररूप में प्रस्तुत किया था। इससे पहले योगविद्या का स्वरूप अलग-अलग ग्रंथों के माध्यम से प्राप्त था जिसे महर्षि पतंजलि ने अपने 'योगसूत्र' में बहुत ही सुन्दर शब्दो में संकलित किया। इन्होंने योग के 195 सूत्रो को संकलित किया । जिसमें राजयोग के माध्यम से आठ अंगो का यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। यहां पर शारीरिक आसन, प्राणयाम कोई नाम नही बताए गए है। योगसूत्र के अन्तर्गत मुद्राओ और श्वसन को भी बतलाया गया है इसके अतिरिक्त यहा पर ध्यान एवं समाधि को विशेष महत्व दिया गया है।

योग का महत्व आस्तिक दर्शनो में तो मिलता है परन्तु नास्तिक दर्शनो में भी योग का महत्व बतलाया गया है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग दर्शनो के साथ जैन एवं बौद्ध दर्शनो में योग स्वरूप बतलाया गया है।

''प्रकृति पुरूषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं श्रेयं च केशव।।1।।[6] – श्रीमद्भगवदगीता

अर्थात:– श्रीकृष्ण से अर्जुन के द्वारा प्रकृति, पुरूष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, ज्ञान तथा ज्ञेय के बारे में पुछना। इस प्रकार श्रीकृष्ण का अर्जुन को यह ज्ञान देना कि शरीर को क्षेत्र कहा जाता है एवं शरीर को जानने वाला क्षेत्रज्ञ कहलाएगा।

वेदन्त दर्शन (ब्रहसुत्र) के पहले पाद में प्राण के बारे में बतलाया गया है यहा पर 'प्राणगतेश्च ।।3।1।3।।7 के द्वारा यह कहा गया है कि प्राण एक शरीर को छोड़कर दुसरे शरीर कैसे जाता है इस बात का उल्लेख यहा पर किया है। जैन दर्शन में मोक्ष के लिए कैवच्य शब्द का प्रयोग किया गया है। बौद्ध दर्शन में मोक्ष को विनिर्वाण कहा गया है। जैन दर्शन में कहा गया है 'बन्धहेत्वभावनिर्जरायाम्'[8] एवं बौद्ध दर्शन में कहा गया है।

''दीपनिर्वाणगन्धंय:।[9] दोनो में कैवल्य एवं निर्वाण प्राप्ति का उल्लेख किया है। जैन दार्शनिको का मानना है कि जिस जीवन को मोक्ष मिल जाता है वह अपने शुद्ध रूप को प्राप्त कर लेता है। बौद्ध दर्शन को मानना है मन के अन्दर काम की आग का बुझ जाना ही निर्वाण है।

आधुनिक समय में योग का महत्व बहुत ही चरमोत्कर्ष पर पहुचँ गया। 1700 से 1900 ई. का समय आधुनिक युग कहलाता है। इस समय के महान योगचार्यो ने राजगोय के विकास में योगदान दिया। इन महान

योगाचार्यो में रमण महर्षि, रामकृष्ण, परमहंस, परमहंस योगानंद एवं विवेकानंद का बहुत योगदान रहा। इस समय हठयोग, वेदांत भक्ति योग एवं नाथ योग बहुत उन्नत हुआ।

महात्मा गांधी ने नैतिकता के लिए योग साधना को अपने जीवन में उतारा । इन्होने सत्य-अहिंसा को योग का साधन बतलाया। अष्टांग योग के द्वारा गांधीजी ने सत्य-अहिंसा का पालन किया । डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन एक अद्वैतवादी विचारक थे इन्होने अपने दर्शन में मानव के असीम एवं ससीम पक्ष पर महत्व दिया। इन्होंने ज्ञान के मार्ग के लिए अन्तदृष्टि को महत्व दिया। श्री अरविन्द ने योग का महत्व बतलाते हुए तीन शब्दो का प्रयोग किया - The Philosophy of Sri Aurobindo My aptly be described as Integral Non-duacism (पूर्ण अद्वैत), or internal Idialism (पूर्ण विज्ञान) or Just integralism (पूर्णवाद) अंग्रेजी के 'Integral' शब्द का अर्थ है जिसमें सभी विभिन्नताये अपनी विभिन्नताओ को खोकर एकरूप हो जाये।[9]

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 27 सितम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में अपने भाषण द्वारा विश्व समुदाय से अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस की अपील की मोदीजी ने कहा -

''योग भारत की प्राचीन परम्परा का एक अमुल्य उपहार है यह दिमाग और शरीर की एकता का प्रतीक हैः मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य है; विचार, संयम और पूर्ति प्रदान करने वाला तथा स्वास्थ्य और भलाई के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को भी प्रदान करने वाला है। यह केवल व्यायाम के बारे में नही है, लेकिन अपने भीतर एकता एकता की भावना, दुनिया और प्रकृति की खोज के विषय में है। हमारी बदलती जीवन-शैली में यह चेतना बनकर, हमे जलवायु परिवर्तन से निपटने में मदद कर सकता है तो आये एक अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस को अपनाने की दिशा में काम करते है।

- नरेन्द्र मोदी, संयुक्त राष्ट्र महासभा[10]

इस प्रकार 11 दिसम्बर 2014 को अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र महासभा में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के प्रस्ताव को मंजूरी मिल गई। इसे 21 जून 2015 को पुरे विश्व में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के नाम से मनाया गया । (इंटरेनेशनल डे ऑफयोग।[11]

**सन्दर्भ सूची:-**


1. 'पतंजलि योगसूत्र'
2. श्रीमद्भगवदगीत यथारूप (स्वामी प्रभुपाद) पृ. 46
3. योगांक (कल्याण) गीताप्रेस, गोरखपुर। पृ. 131
4. 3योगांक (कल्याण) गीताप्रेस, गोरखपुर। पृ. 280
5. योगांक (कल्याण) गीताप्रेस, गोरखपुर। पृ. 280
6. श्रीमदभगवद् गीता यथारूप/स्वामी प्रभुपाद। पृ. 563
7. समकालीन भारतीय दर्शन । बसन्त कुमार लाल । पृ. 199
8. समकालीन भारतीय दर्शन । बसन्त कुमार लाल । पृ. 199
9. 'Un declares June 21 as 'International Day 'द टाइम्स आफइण्डिया, 11 दिसंबर 2014.
10. "International Yoga Day Hindi : पुरातन भारत में कैसा था योग का प्रारूप?'' (अंग्रेजी में) 2020-06-20 अभिगमन तिथि 2020-06-20
11. "International Yoga Day Hindi : पुरातन भारत में कैसा था योग का प्रारूप?'' (अंग्रेजी में) 2020-06-20 अभिगमन तिथि 2020-06-20

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# 'शिकंजे का दर्द' - दलित नारी के संघर्ष की गाथा

**डॉ. सनु थोमस**

असिस्टेंट प्रोफेसर, कथालिकेट कॉलेज, पथनमथित्ता, केरल

आधुनिक साहित्य के इतिहास में दलित साहित्य एक ऐसा इतिहास है जो क्षेत्र और भाषा की सीमाओं को लांघकर राष्ट्रीय संवेदना एवं सामूहिकता का बोध कराता है। दलित साहित्य जाति प्रथा और श्रेष्ठताबोध को तोड़कर बंधुता और स्वतंत्रता की संस्कृति का बीजारोपण कर रहा है। हिंदू धर्म की वर्णाश्रम व्यवस्था, पुनर्जन्म और कर्मफल पर टिकी हुई है। इसके अनुसार पूर्व जन्म में किए गए कर्म के आधार पर ऊंची या नीची जातियों में जन्म होता है अर्थात् जाति स्वयं भगवान का निर्णय है। इसलिए दलितों के लिए निर्विकार भाव से सेव करना अवश्यक बना दिया गया, यही उनकी मुक्ति का मार्ग माना जाता रहा है। जो अभी भी अवचेतन में गुलामी का पर्याय बना हुआ है। दलित साहित्य इस मानसिक गुलामी की सोच को बेनक़ाब करता है। भारतीय समाज व्यवस्था की भेदभावपूर्ण क्रूर प्रणाली ने धार्मिक चोंगा पहनकर और मर्यादा का आवरण ओढकर ब्राह्मणवाद का रूप धारण किया जिसने धार्मिक कर्मकांड, अंधविश्वास और जन्मना ऊँच-नीच की भावना को वैधता प्रदान किया। आज भी तमाम नियमों, कानूनों के बावजूद परंपरागत रूप में यह अमानवीय कुरीतियाँ भयानकता के साथ हमारे समाज में विद्यमान है। दलित लेखन में इन्हीं विषयों का वर्णन है। दलित विमर्श की अनिवार्य शर्त बन चुकी है कि दलित साहित्य का लेखक केवल दलित ही हो सकता है।

समाज में स्त्री की स्थिति हमेशा मानवीय से परे रही है, या तो उसे लोक से परे रखकर देवी मूल्यों के कारण शोषित है तो बाहर समाज में जातिगत कारणों से पीड़ा सहती है। एक ओर जहाँ वह स्त्री होने के नाते सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में अपने आपको असुरक्षित महसूस करने लगी, वहीं दूसरी ओर अपनी जातीय स्थिति के कारण वे दोहरे अत्याचार, शोषण और अपमान का पात्र बनी। वह वर्तमान समाज में तिहरा अभिशाप जाति ,लिंग और गरीबी झेल रही है। इसी स्थिति का विवरण श्रीमती सुशीला टाकभौरे ने अपनी आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में किया है।

जीवन की सच्ची कथाओं को वाणी देने का दायित्व आत्मकथा को है। ऐसी सच्ची कथाओं को लिखना साहसिक एवं चुनौतीपूर्ण है। दलित समाज की निम्नतम पायदान में आते हैं भंगी या वाल्मीकि, जिनका पैतृक पेशा सफाई करना है। इसी वर्ग से 'शिकंजे का दर्द' की लेखिका सुशीला टाकभौरे आती है। यह एक आत्मकथा है जिसमें छटपटाती दलित स्त्री का चित्र उभरकर सामने आता है। उन्होंने अपनी भूमिका में स्वीकार किया है- 'जिस तरह किसी ताकतवर को शिकंजे में जकड़कर उसकी पूरी ताकत को नगण्य बना दिया जाता है, उसी तरह मुझे भी सामाजिक जीवन की मनुवादी विषमता ने वर्णवादी, जातिवादी समाजव्यवस्था ने शिकंजे में जकडकर रखा जिसका परिणाम पीड़ा, दर्द, छटपटाहट के सिवा कुछ नहीं है।'[1]

सुशीला का बचपन अभाव, अछूत के दर्द से ग्रसित था, जिसका वर्णन उन्होंने इस आत्मकथा में बड़ी बेबाकी के साथ किया है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि अछूतोद्धार के प्रेरणा तहत शिक्षण संस्थाओं के द्वारा दलितों के लिए खुल गए थे। लेकिन जनसामान्य की मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आया था। इन संस्थाओं में मिलनेवाली प्रताडना से परेशान दलितों को अपने पैतृक पेशे में लगने के सिवा कोई रास्ता दिखाई नहीं देता था। शिक्षार्थी ही नहीं शिक्षकों का भी व्यवहार भेदभावपूर्ण होता था। कक्षा में विद्यार्थियों के बैठने का काम हिंदू समाज व्यवस्था के अनुरूप है। सबसे आगे सवर्ण, फिर पिछड़ी जाति के अंत में दलित जाति के बच्चे फर्श पर बैठते थे। लेखिका को अपने पति के घर में जिन प्रताड़नाओं को सहना पड़ता है उसका भी बड़े विस्तार से वर्णन किया है ।शिक्षित नौकरीपेशा होने के बावजूद लेखिका को वह सम्मान नहीं मिल पाता है, जिसकी वह हकदार है। सास, ननद और पति के व्यवहारों की उन्होंने कटु आलोचना की है। उच्च शिक्षित एवं कॉलेज की अध्यापिका होने के बावजूद उन्हें सवर्ण समाज में किराए पर आवाज़ नहीं मिल पाता है । सुशील जी की माँ और नानी खुद अनाज पीसती है क्योंकि चक्कीवाले दलितों का अनाज पीसकर नहीं देते। लेकिन अंग्रेजों के विषय में उनके मां, नानी और पिता का कहना है 'सबको समानता की एक नजर से देखते थे। उन्होंने हमसे कभी भेदभाव नहीं किया। अपने देश के लोगों के मन में हमारे लिए कभी ऐसी भावना नहीं रही। अंग्रेजों के आने से ही हमारे बच्चों को पढ़ने-लिखने का मौका मिल सका है।'[2] दलित जातियों में उभर रही सवर्णवादी मानसिकता और उच्च नीच की भावना से अति दलित आहत होते हैं। दलित जाति के भीतर भी ऊंच नीच की भावना बरकरार है और जिनकी जड़ें गहरी है। लेखिका ने उनमें व्याप्त पूजा, आडंबर ,अंधविश्वास और धार्मिक ढकोसलों का विरोध किया है। गरीब होने की अपेक्षा गरीबों का अपमान सहना ज्यादा कष्टदायक है। भूख, अभाव, अपमान आदि उनकी प्रतिदिन की समस्या है। इन सबके साथ अनमेल विवाह का दर्द भी झेल रही है। संयुक्त परिवार में रहते हुए पति के अत्याचार का उल्लेख साहसिक है। उन्होंने संयुक्त परिवार में बहू के शोषण को बेपर्दा किया है ।यह भी देखा गया है कि इस समाज की पढी-लिखी महिलाएं परंपरागत और पुरुषवादी विचारधारा से मुक्त नहीं हो पाती हैं। भौतिक सुख साधन जुटाकर अंधविश्वास के घेरे में है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि लेखिका आर्थिक शोषण, सामाजिक प्रताड़ना और घरेलू हिंसा की शिकार है।

आज दलित महापुरुषों के नाम पर मूर्ति, पार्क एवं मार्ग बनाए जा रहे हैं। ऐसी योजनाओं पर सुशीलाजी कहती है 'वाल्मीकि मार्ग और वाल्मीकि पार्क वाल्मीकि जाति की समस्याओं और अपमान का निराकरण

कैसे करेंगे।'[3] दलित समस्या का समाधान  वास्तविकता को समझे बगैर किया जा रहा है। इन योजनाओं में दिखावा और बाह्याडंबर अधिक है वास्तविक समाधान कम। उत्तर आधुनिक युग में मध्ययुगीन समाधान प्रस्तुत किया जा रहा है। इस आत्मकथा में लेखिका का कवि हृदय उभर कर हमारे सामने आया है। यहाँ वहाँ प्रकृति सौंदर्य का वर्णन है। इसमें लेखिका पढी-लिखी नौकरीपेशा दलित नारी की प्रतिनिधित्व कर रही है। इसके द्वारा उन्होंने दलित समाज के विसंगतियों को प्रस्तुत करने में कामयाब हुए हैं। जाति व्यवस्था और पितृसत्ता के शिकंजे में तड़पती सुशीलाजी धैर्य नहीं छोड़ती है बल्कि सधैर्य आगे बढ़ती जा रही है और उन्होंने अपने भोगे हुए यथार्थ और झेले हुए पीड़ा को इस आत्मकथा में प्रस्तुत किया है।

**संदर्भ सूची**:-


1. सुशीला टाकभौरे- शिकंजे का दर्द ,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (भूमिका से )
2. वहीं ,पृष्ठ 69
3. वही ,पृष्ठ 253

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# भाषा का बालक की शैक्षिक उपलब्धि में भूमिका का अध्ययन

**अनिल कुमार कश्यप**
**प्रो. (डॉ.) तबस्सुम खान**

1. शोधार्थी, शिक्षा शास्त्र विभाग, सांईनाथ विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड
2. शोध निर्देशक, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी संकाय, शिक्षा शास्त्र विभाग, सांईनाथ विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड

**न चोर हार्य न राज हार्य न भ्रतृ भाज्यं न च भारकारि।**
**व्यये कृते वर्धति एव नित्यं विद्या धनं सर्वधन प्रधानम्।।**

अर्थात् ऐसा धन जिसे चुराया नहीं जा सकता, जिसे कोई भी छीन नहीं सकता, जिसका भाईयों के बीच बंटवारा नहीं किया जा सकता, जिसे संभालना बिलकुल भी मुश्किल नहीं है, और जो खर्च करने पर और अधिक बढ़ता है, वह धन विद्या है। विद्या (शिक्षा) सबसे श्रेष्ठ धन है। अतः यह उक्ति भी सही प्रतीत होती है-''विद्या ददाति विनयम्''

**सारांश:-**

**मेकेन्जी के अनुसार**- व्यापक अर्थ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जो जीवन पर्यन्त चलती है तथा जो जीवन के प्रत्येक अनुभव से आगे बढ़ती है।'' शिक्षा को सदैव से ही राष्ट्र एवं समाज की प्रगति के एक महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली साधन के रूप में स्वीकार किया जाता है। मानव को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा की आवश्यकता होती है। भाषा विचार विनियम का एक सशक्त माध्यम है भाषा का प्रयोग केवल विचारों या भावनाओं के आदान प्रदान के लिए ही नहीं किया जाता अपितु भाषा का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में भी किया जाता है। भाषा बालकों की शिक्षा को स्पष्ट आकार देने में सहायता करती है। प्रस्तुत शोध पत्र में भाषा के विकास तथा महत्व का शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है इस पर विचार किया गया है।

**शब्द कुंजी:**-अभिव्यक्ति, भावमुद्रा, आडिटरी, वाक्, इष्टतम्।

**प्रस्तावना:**-मानव अपने विचार विनियम में भाव मुद्राओं संकेतो, तथा भाषा का प्रयोग करता है। भाषा ही सबसे सरल सुगम एवं सर्वव्यापी शाब्दिक भाषा माध्यम है। क्योंकि भावमुद्राओं एवं संकेतो का क्षेत्र सीमित होता है। सामान्यतः छः प्रकार की भाषाओं अर्थात्-मातृभाषा, क्षेत्रीय भाषा, राष्ट्र भाषा, प्राचीन भाषा, विदेशी भाषा तथा राष्ट्रीय भाषा तथा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की चर्चा की जाती है। तथा जिस भाषा को बालक जन्म के पश्चात माता-पिता परिवार के सदस्यों से सीखता है उसे मातृभाषा कहते है। मातृभाषा में व्यक्ति का सर्वोत्तम अधिकार होता है। भाषा शब्द वस्तुतः संस्कृत शब्द (भाष) धातु से बना हुआ है। जिसका अर्थ (बोलना) होता है।

वेस्टर (Webster)-ने भाषा की परिभाषा देते हुए कहा कि ''भाषा भाव या विचार की अभिव्यक्त करने या संचारित करने का मौखिक या अन्यथा कोई साधन है।''

**महर्षि पतंजलि**- ने अपने (महाकाव्य) में भाषा को परिभाषित करते हुए कहा है-''व्यक्ता वाचि वर्णा मेषां त इमें व्यक्तवान'' अर्थात् भाषा वह व्यवहार है जिसमें हम वर्णात्मक अथवा व्यक्त शब्दों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते है।

**स्वीट के अनुसार**-ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों का प्रकटीकरण भाषा है।'' भाषा एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है। भाषा शिक्षण में मौखिक अभिव्यक्ति के शिक्षण का विशेष महत्व होता है। मौखिक अभिव्यक्ति से अर्जित कुशलताये अन्य भाषायी कौशलो के विकास में सहायक होती है। भाषा का शैक्षिक उपलब्धि में महत्वपूर्ण योगदान होता है। यदि बालक का भाषा विकास अच्छा होता है तो वह अन्य विषय जैसे- गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, साहित्य जैसे विषयों को बड़ी आसानी से समझ एवं सीख लेता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भाषा का सम्बन्ध सीखने को प्रक्रिया से होता है। बालक का भाषा ज्ञान किसी भी विषय की उपलब्धि के परिणाम को इष्टतम् बनाने का प्रयास करता है।

भाषा विकास-मनोवैज्ञानिक ने बालक के भाषा विकास की प्रक्रिया को दो भागों में बांटा है:-

1. पूर्व वाक् भाषा विकास 2. पश्च वाक् भाषा विकास

जन्म के प्रथम पन्द्रह महीने में होने वाले भाषा विकास को पूर्व वाक् भाषा विकास कहा जाता है। इसमें बालक अपनी अभिव्यक्तियों को हावभाव अथवा अभिव्यक्तात्मक वाचकता आदि के द्वारा व्यक्त करता है। इसमें बालक अपनी संचार आवश्यकताओं को निम्न चार प्रकार से व्यक्त करता है।

- **रुदन**-इसमें शिक्षु रुदन (Crying) द्वारा बालक अपनी इच्छाओं को अभिव्यक्त करता है।
- **बडबड़ाना**-भाषा विकास को दूसरी अवस्था है इसमें शिशु जब सात आठ माह का होता है तो वह बार-बार ध्वनि उच्चारित करता है जो अर्थपूर्ण हो जाता है। जैसे-दा दा, मा मा, ना ना, पा पा आदि।
- **हावभाव**-हावभाव का प्रयोग बालक जब करता है जब तक की वह शब्द को वाक्यों के रूप में बोलने में सक्षम नहीं हो जाता है।
- **सांवेगिक अभिव्यक्ति**-सांवेगिक अभिव्यक्ति में बालक विभिन्न संवेगों को मूल प्रवृत्तियों के सापेक्ष प्रस्तुत करता है। एक वर्ष के बालक में सावेगिक अभिव्यक्ति के गुण प्रदर्शन होने लगते है। पश्च वाक् भाषा विकास लगभग पन्द्रह माह की आयु के उपरान्त होने वाला भाषा विकास है। इसमें बालक पाँच प्रकार की सामर्थ्य विकसित करता है।
- **भाषा अवबोध**-भाषा अवबोध में बालक परिवार में बोले गये शब्दो वाक्यों को समझना सीखता है।
- **शब्दावली निर्माण**-शब्दावली निर्माण में सामान्यतः बालक उसकी

जैविकीय जरूरत से जुड़े शब्द पहले सीखते है उसके पश्चात परिवेश में प्रमुखता से बोले जाने वाले शब्दों को सीखता है।

- **वाक्य संगठन**– वाक्य संगठन में प्रारंभ में वाक् के वाक्य अस्पष्ट व भाषा विज्ञान की दृष्टि से अपूर्ण होते है। ढाई तीन वर्ष की आयु के बालक छोटा वाक्य बनाने का प्रयास करते है। जब बालक पॉच साल के हो जाते है तो शब्दों को मिलाकर वाक्य बनाना व बोलना सीख जाते है। सात आठ वर्ष की आयु में बालक सुगमता से वाक्य बनाने व बोलने लग जाते है।

**सही उच्चारण**– इसमें बालक भाषा का उच्चारण सीखते है पहले बालक परिवार के सदस्यों की भाषा सुनता है, और उसकी नकल करता है। प्रारंभ में बच्चे अशुद्ध उच्चारण करते हे, उनके अशुद्ध उच्चारण को दूर किया जाना चाहिए। जिससे वे सही उच्चारण करना सीख सकें।

**भाषा स्वामित्व**–भाषा विकास के इस अन्तिम चरण में बालक शब्दों वाक्यों को वाक्य विन्यास की दृष्टि से सही–सही बोलना व बनाना सीख लेता है। जिसके परिणाम स्वरूप वह लिखित भाषा तथा मौखिक भाषा दोनों में नियन्त्रण अर्जित कर लेता है। भाषा विकास का स्वरूप वैयक्तिव् होता है एवं विभिन्न बालकों में भाषा विकास की गति, दिशा व दशा भिन्न–भिन्न होती है। भाषा विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की विशेष भूमिका होती है।

- स्वास्थ्य का बालकों की भाषा विकास में अहम भूमिका होती है। बीमार बालक का किसी भी बीमारी के कारण उसका भाषा विकास अवरूद्ध हो जाता है।
- बालकों की बुद्धि स्तर का प्रभाव भाषा सीखने पर पड़ता है। कुशाग्र बुद्धि के बालकों का भाषाा विकास तीव्र गति से होता है। जबकि कम बुद्धिलब्धि वाले बालकों का भाषा विकास धीमी गति से होता है।
- सामाजिक आर्थिक स्तर का प्रभाव भी भाषा सीखने में देखने को मिलता है। प्रायः देखा जाता है कि उच्च आय वर्ग वाले घरों में रेडियो, टीबी, तथा अन्य संसाधन तथा साथ ही पढ़ने लिखने तथा प्रशिक्षण आदि के लिए प्रेरित किया जाता है वही इसके विपरीत निम्न आय वर्ग में इन सब चीजों का अभाव देखने को मिलता है, जिससे ऐसे बालक जो निम्न आय वाले परिवार से आते है उनका भाषा विकास उच्च वर्ग के बच्चों की अपेक्षा कम देखने को मिलता है।
- ऐसे परिवार जहॉ बहुभाषा का प्रयोग होता है। प्रारंभ में ऐसे परिवार के बालकों को एक भाषा भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। और यदि बालक को एक ही भाषा सिखायी जाती है तो बालाकों का भाषा विकास अच्छा होता है।
- अभिभावकों की प्रेरणा एक महत्वपूर्ण कारक है जो बालकों को भाषा सीखने बोलने में नहीं वरन प्रत्येक क्षेत्र में उनकी सहायता प्रदान करता है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बालकों का भाषा विकास अनेक कारकों द्वारा निर्धारित होता है बालका का जन्म क्रम, आर्थिक सामाजिक स्थिति शैक्षिक स्थिति सभी बालक की भाषा को प्रभावित करते है।
- बालकों में भाषा विकास के साथ–साथ कुछ बाधायें भी आती है जिसे परिवार तथा शिक्षकों के माध्यम से इनको दूर करने का प्रयास किया जा सकता है। बाधाये निम्न प्रकार है –
- वाक् विकार – दोषपूर्ण वाणी को वाक् विकास कहा जाता है, इसमें अशुद्ध उच्चारण स्त्रीलिंग, पुल्लिंग में भेद न करना आदि समस्याये देखने को मिलती है। वाक विकास को दूर करने के लिए छात्रों के समक्ष शुद्ध भाषा को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
- **उच्चारण विकास**–उच्चारण विकास में अस्पष्ट भाषा उच्चारण व हकलाना तुतलाना भी वाणी दोष वा भाषा भाषा विकृति के कारण होते है। इसमें बालक के आडटरी सिस्टम का संतुलित विकास न होने से ऐसा देखने को मिलता है।

भाषा विकास में कई प्रकार की प्रविधियों का प्रयोग होता है।

- बालकों में अनुकरण की जन्मजात प्रवृति पायी जाती है। परिवार में बालक बड़ो का अनुकरण कर भाषा को सीखते है। इसके अतिरिक्त खेल मैदान में तथा विघालयी पाठ्यचर्या के दौरान बालक कहानी, वार्तालाप, प्रश्नोत्तर पढ़ना लिखना आदि क्रियाओं द्वारा भी भाषा सीखने, बोलने, पढ़ने में प्रवीण होते है। जिससे बालकों का भाषा विकास बेहतर होता है।

**शैक्षिक उपलब्धि**:– शैक्षिक उपलब्धि किसी भी व्यक्ति या समूह के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त की गई सफलता या उन्नति है। यह किसी शिक्षार्थी, शिक्षक या शैक्षिक संस्था द्वारा प्राप्त किये गये परिणामों और उपलब्धियों को इंगित करती है। अर्थात् शिक्षा के क्षेत्र में जो ज्ञान अर्जित किया जाता है उसे ही शैक्षिक उपलब्धि कहते है। शैक्षिक उपलब्धि अच्छी होने पर कार्य में गुणवत्ता आती है तथा कार्य के प्रति उत्साह बढ़ता है। इसके विपरीत शैक्षिक उपलब्धि संतोष जनक न होने पर हताशा हाथ आती है। शैक्षिक उपलब्धियों की कुछ प्रमुख विशेषायें – 1. उत्तम शैक्षिक परिणाम– जैसे परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करना, उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण होना।

2. नई शैक्षिक तकनीकी का विकास – जैसे शिक्षण में नवाचार, तकनीकी सुधार, और नये शैक्षिक तरीकों को
अपनाना।

3. शैक्षिक संस्थाओं का विकास – जैसे स्कूल या विश्वविद्यालयों द्वारा शैक्षिक कार्यक्रमों में सुधार करना और छात्रों को बेहतर शिक्षा प्रदान करना।

बालकों की भाषा विकास की प्रक्रिया तथा उनकी शिक्षा व्यवस्था के बीच अत्यन्त धनिष्ठ संबंध पाया जाता है। भाषा विकास में तीन तरह की शिक्षा अर्थात् औपचारिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा तथा निरौपचारिक शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। औपचारिक शिक्षा में विद्यालय में नियोजित व व्यवस्थित शिक्षा प्रदान की जाती है। वही अनौपचारिक शिक्षा में विद्यालय के बाहर घर, परिवार तथा अन्य स्थलों से शिक्षा प्राप्त होती जिसका कोई निश्चित पाठ्यक्रम या प्रेमवर्क नहीं रहता है। तथा निरौपचारिक शिक्षा में शिक्षा सीखने वाले के सुविधानुसार दी जाती है। इसमें खुली शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा, सतत् शिक्षा, पौढ़ शिक्षा शामिल किये जाते है। विद्यालय में अलग–अलग कक्षाओं में विद्यार्थी साल भर विभिन्न विषयों पर ज्ञान प्राप्त करते है। सभी विद्यार्थियों के ज्ञानर्जन की सीमा समान नहीं होती है। मूल्यांकन की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का पता चलता है। शिक्षा अपने आप में सभी प्रकार से विद्यार्थी के व्यवहार में परिवर्तन लाने का एक साधन है। इसका उद्देश्य विद्यार्थी के व्यवहार में परिवर्तन कर उसके व्यक्तित्व का सर्वागींण विकास करना है। संक्षेप में शैक्षिक उपलब्धि किसी भी शैक्षिक क्षेत्र में प्राप्त की गई सफलता उन्नति और प्रभाव को दर्शाती है। जो व्यक्तियों या संस्थाओं की शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता और कठिन परिश्रम का परिणाम होती है।

**निष्कर्ष**:– निःसन्देह बालकों के भाषा विकास कई कारणों से प्रभावित होते है जिनमें बुद्धि, स्वाथ्य, यौन विभिन्नता, सामाजिक–आर्थिक स्तर, परिवार का आकार, बहुजन्म, एक से अधिक भाषा का उपयोग, साथियों के साथ संबंध तथा माता–पिता द्वारा प्रेरणा प्रधान है। बालकों को शैक्षिक

उपलब्धि में भाषा के महत्व का पता चलता है। बालको का जैसा भाषा पर अधिकार होता है वैसी ही उपलब्धि देखने को मिलती है। मातृभाषा तथा अन्य भाषा की भिन्नता भाषा अधिगम को विविध रूपों में प्रभवित करती है। भाषा न केवल बालकों के संज्ञानात्मक तथा संचार कौशल में परिमार्जन करती है, बल्कि उनके रचनात्मक सोच एवं समस्या समाधान क्षमता भी बढ़ाती है। भाषा शक्तिशाली उपकरण है जो बच्चों के समग्र विकास और शैक्षिक उपलब्धि में सहायता होती है।

**सन्दर्भ सूची:-**


1. गुप्ता एस0पी0/गुप्ता अल्का उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान सिद्धान्त एवं व्यवहार शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, संस्करण-2019, पृष्ठ सं0-198, 199, 200, 201, 203, 206 और 207
2. सिंह, अरूण कुमार, शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2010, पृष्ठ सं0- 182
3. भाई योगेन्द्रजीत भाषा का शिक्षण शास्त्र, अग्रवाल पब्लिकेशन्स संस्करण, प्रथम 2014-15, पृष्ठ सं0 1, 2
4. एस0 के मंगल, शिक्षा मनोविज्ञान, संस्करण-2013, पृष्ठ सं0 22
5. अस्मिता ''भाषा और शिक्षा एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध'' शिक्षा समीक्षा, 2022
6. शर्मा र भाषा का महत्व बच्चों के मानसिक विकास में बाल विकास पत्रिका, 2021

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# समतापरक भारत का सपना और दलित साहित्य की सर्जनात्मकता

छोटी मीना

शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सदियों से भारत की सामाजिक संरचना वर्ण एवं जाति आधारित रही है। शुरूआत के समय को जब हम देखते हैं तो पाते हैं कि समाज के प्रत्येक वर्ण के अलग-अलग कार्य निर्धारित थे और एक तरह से यह बंद व्यवस्था थीं। इस संबंध में डॉ. बी आर अम्बेडकर का वक्तव्य दृष्टव्य है- 'हिन्दुस्तान देश केवल विषमता का आश्रय स्थान है। हिन्दू समाज उसकी एक मीनार है और प्रत्येक जाति उसकी एक मंजिल है। लेकिन ध्यान रखने की बात यह है कि इस मीनार में सीढ़ी नहीं लगी हैं। एक मंजिल से दूसरी मंजिल तक जाने के लिए उसमें मार्ग नही रखा गया है। जिस मंजिल में जन्में, उसी मंजिल में मरे। नीचे की मंजिल में जन्मा व्यक्ति चाहे कितना ही लायक क्यो न हो, उसे ऊपर वाली मंजिल में प्रवेश नहीं और उपर की मंजिल में जन्मा व्यक्ति, चाहे वह कितना ही नालायक क्यो न हो, उसे भी मंजिल से ढकेलने का साहस, किसी में नहीं। सचेतन और अचेतन पदार्थ सारे ईश्वर के रूप हैं, ऐसा कहने वाले स्वधर्मियों को ही अपवित्र मानते है।'

-मूकनायक पाक्षिक में डॉ. बी आर अम्बेडकर के लेख से

किसी भी देश व समाज के विकास में सभी नागरिकों को हिस्सेदारी अनिवार्य होती है। अगर किसी कारणवश कुछ लोगों की हिस्सेदारी शामिल नहीं हो पा रही है तो यह निश्चित है कि उस देश समाज का विकास उस प्रकार से नहीं होगा जिस तरह से होना चाहिए। जब हम भारत के विकास के संबंध में यह देखते हैं तो पाते हैं कि समाज में असमानता और गैर-बराबरी व्याप्त है जिसके कारण देश के विकास में सभी नागरिकों का योगदान संभंब नहीं हो सका है। इस गैर-बराबरी ने कुछ समाज के मनुष्यों के विकास को रोका है जिससे देश के विकास पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इसी के कारण भारत के लोगों का एकता जैसे सूत्र में बने रहना आज भी एक सपना है। देश के विकास का वास्तविक अर्थ है सभी लोगों का प्रतिनिधित्व और हिस्सेदारी। इसलिए सामाजिक बराबरी और भारत के विकास का गहन अंतर्संबंध है।

हिंदी में दलित साहित्य की चर्चा और उस पर उठे विवादों ने हिंदी साहित्य को ही कटघरे में खड़ा किया है। हम पाते हैं कि जब शुरूआत में दलित साहित्य अपने आरंभिक चरण में था तो हिंदी साहित्य के मठाधीस, समीक्षक, आलोचक दलित साहित्य के अस्तित्व को ही नकार रहे थे किंतु दलित साहित्य ने भाषा, बिम्ब, प्रतीक और परम्परा के स्तर पर पुरानी अतार्किक मान्यताओं को खारिज किया और साहित्य में अभिव्यक्ति के नये आयामों को शामिल किया।

दलित साहित्य समाज सापेक्ष है। साहित्य की मूल संवेदना के साथ-साथ दलित साहित्य मनुष्य की स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की भावना को सर्वोपरि मानता है। यही सब विचार दलित साहित्य को सर्ज़नात्मक रूप प्रदान करते हैं। दलितों पर हिंसा, दमन और अत्याचार को मार्मिकता के साथ अपने साहित्य में उभरना इसकी सर्ज़नात्मकता का पहला उदाहरण है। ओमप्रकाश वालमीकि ने इस सामूहिक अनुभव को अपनी एक कविता में इस प्रकार से चित्रित किया है-

'मैं जानता हूँ
मेरा दर्द तुम्हारे लिए चींटी जैसा
और तुम्हारा अपना दर्द पहाड़ जैसा
इसलिए
मेरे और तुम्हारे बीच,
एक लंबा फासला है
जिसे लंबाई से नहीं
समय से नापा जाएगा।'

दलित साहित्य ने उस वर्ग की पीड़ा और वेदना को अपने साहित्य में उठाया जिसका चेहरा अभी तक के परंपरावादी साहित्य में नहीं दिखता है। हिंदी साहित्य के अधूरे, अनछुए और अनुत्तरित प्रश्नों को दलित साहित्य ने अपने माध्यम से प्रस्तुत किया है जिससे हिंदी साहित्य के विकास में उत्तरोत्तर वृद्धि देखने को मिलती है। दलित साहित्य में सदियों के उस दमन का चित्रण है जो अब तक कि साहित्य में नजर नहीं आता हैं। दलित कविता के उद्भव को भी हम इसी तरह से देख सकते हैं कि-

'हजारों वर्षों का अंधेरा
छिपा बैठा है मेरी सांसो में
कांपता है दिये की लौं-सा
और तब्दील हो जाता है कविता में।'

दलित साहित्य की वैचारिकी में उस वर्णवादी मानसिकता को चुनौती दी हैं जिसने दलित समाज को सदियों तक अपना गुलाम बनाकर रखा था। हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य की परंपरागत काव्य परंपरा में अब तक जाति को प्रश्नांकित नहीं किया गया है। वर्ण और जाति की श्रेणीबद्धता पर प्रहार दलित साहित्य की अनूठी विशेषता है। वर्चस्वशाली सभ्यता एवं संस्कृति के हजारों सालों के इतिहास, संस्कृति, धर्म एवं साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण हमें दलित साहित्य में ही देखने को मिलता है। दलित साहित्य तार्किक ढंग से उस सच को समाज एवं साहित्य के समक्ष प्रस्तुत करता है जो अभी तक कहीं छुपा हुआ था। इस तरह की परम्परावादी मानसिकता को दलित कविता इस प्रकार से प्रश्नांकित करती है-

'चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हो।'

हिंदू संस्कृति द्वारा निर्मित धर्मशास्त्र, पुराण, स्मृतियाँ, मिथक,

कर्मकाण्ड और अंधविश्वास की परंपरा को बदलने की अनुगूंज दलित साहित्य में प्रमुखता से नजर आती है। साथ ही हिंदू सभ्यता और संस्कृति की हिंसा और षड्यंत्रों को बेनकाब भी किया है। दलित साहित्यकारों ने यह स्पष्ट किया है कि हिंदू-व्यवस्था की जो क्रुरताएँ थी उन्हें जानबूझकर अनदेखा और अनसूना कर दिया गया था। ईश्वर और देवता के अस्तित्व पर संदेह भी दलित साहित्य की मुख्य प्रवृति है क्योंकि सदियों से दलित वर्ग भाग्य-भगवान के सहारे ठगा जाता रहा है। अंधविश्वास और आस्था के नाम पर उस डराया सताया जाता रहा है। इसको लेकर दलित साहित्य में लिखा है-

'सच बोलने से नहीं रोक पाएंगे
अब शातिर देवता भी
फड़फड़ाएंगे इतिहास पृष्ठ
कहेंगे आओ, दर्ज कर दो
किसी भी पन्ने पर,
अपने अंगूठे का निशान।'

दलित साहित्य ने पारंपरिक साहित्य के प्रतिमान एवं परंपराओं को नकारते हुए अपने अनुसार सौन्दर्यशास्त्र के नये प्रतिमान गढ़े हैं। उन्होंने मिथकों, प्रतीकों और बिंबो को अपने अनुसार गढ़ा है और भाषा को उसी रूप में व्यक्त किया है जिस रूप में वह समाज में बोली जाती है। दलित साहित्य पर अक्सर यह आरोप भी लगते हैं कि उनकी भाषा में वह संस्कार नहीं है जो कि पहले के साहित्य में नजर आता हैं, उनकी भाषा पर असभ्य, गाली-गलौच से युक्त और अनगढ़पन का भी आरोप लगता हैं किंतु ये आरोप निराधार है। दलित साहित्य अपने अनगढ़पन में ही नवीन बिम्ब विधान सृजित करता है और समता की भाषा में रचना करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'पेड़' कविता सामान्य और सहज भाषा के साथ हिंदी साहित्य के समानान्तर बिम्बार्थ का नया संसार रचती है-

'पेड़
तुम उसी वक्त तक पेड़ हो
जब तक कि ये पत्ते
तुम्हारे साथ हैं
पत्ते झरते ही
पेड़ नहीं ठूँठ कहलाओगे
जीते जी मर जाओगो।'

दलित साहित्य की वैचारिकी का मुख्य आधार फूले-अम्बेडकर के विचार हैं जिसमें बुद्ध के अहिंसक और समतावादी विचारों को भी अपनाया है। रजनी तिलक लिखती है-

'हम जंग नहीं चाहते
जीना चाहते हैं
हम विनाश नहीं सर्जन चाहते हैं
बुद्ध चाहते हैं।'

दलित साहित्य ने स्त्री की परंपरागत छवि को तोड़ा है और उसके अधिकारों की लड़ाई को प्रमुखता से उठाया है। हम देखते हैं कि दलित एवं आदिवासी समाज की स्त्रियां तो पहले से ही कंधे से कंधा मिलाकर घर की चारदीवारी से बाहर के विभिन्न कार्यों में सहायता करती थी किंतु तथाकथित उच्च वर्ण की स्त्रियों को घर की चारदीवारी के अंदर ही रहना पड़ता था जिसके कारण उनको वह स्वतंत्रता और आजादी नहीं मिली जो कि मिलनी चाहिए थी। किंतु दलित साहित्य सभी मनुष्यों की बराबरी एवं पक्षधरता की बात करता है। रजनी अनुरागी लिखती है-

'मैं वैसी नहीं हूँ
जैसी तुम मुझे देखते हो
मैं वैसी हूँ
जैसी मैं खुद को देखती हूँ
तुम देख नहीं सकते मुझको
मेरी ही तरह।'

दलित साहित्य में स्त्री मुक्ति का भिन्न स्वर इसी कारण नजर आता है क्योंकि उसमें स्त्रियां संघर्षशील समाज में रहकर उसे बेहतर बनाना चाहती है। स्त्रियों को वस्तु या देवी की तरह नहीं बल्कि एक मनुष्य की तरह ही चित्रित किया गया है। दलित साहित्य नकार का साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है तथा जिसमें समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का भाव है और वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिवाद का विरोध है। बहुजन हिताए, बहुजन सुखाए इसके मूल में है। डा. एन सिंह का कहना है कि 'इस धारा के रचनाकार गाँव और छोटे कस्बों में रहकर आम आदमी की सारी दिक्कतों को झेलते हुए, समय मिलते ही अपनी लहुलुहान चेतना को इस प्रतिबद्धता के साथ अभिव्यक्त करते हैं कि आसपास बिखरा गूँगा बहरा जनसमूह मेरी आवाज सुनकर जाग जाए। दलित साहित्यकार पसीने में डूबकर पसीने की बातें करते हैं। शायद त्रासदियों में कुछ परिवर्तन आए।'

दलित साहित्य ने संविधान, समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व को अपने यहाँ से जगह दी है। डॉ. अम्बेडकर के जीवन दर्शन से दलित साहित्य को जो वैचारिक परिपक्वता और बौद्धिकता मिलती है वह दलित साहित्य को बहुआयामी और विस्तृत भूमि प्रदान करती है। साथ ही जाति के अछुतपन और गैरबराबरी से मुक्ति का आह्वान इस साहित्य ने किया है। दलित साहित्य ने शिक्षा और न्याय को भी अपने लेखन में प्रमुख जगह दी है। इस तरह की वैचारिक प्रतिबद्धता से ही समतापरक समाज का निर्माण संभव हो सकता है जिसमें मनुष्य की पक्षधरता को केन्द्र में रखा है। दलित साहित्य हमें एक नये समाज, जिसमें सभी का प्रतिनिधित्व हो, का रास्ता प्रदान करता है। इसे संदर्भ में दलित रचनाकार लिखता है कि जिस तरह पेड़ का हर पत्ता हरा होने से पेड़ के वजूद का पता चलता है उसी प्रकार भारतीय समाज की सही पहचान तब होगी जब समाज की सभी जातियों को समान अवसर मिले। कुल मिलाकर दलित साहित्य भविष्य का साहित्य है। राजेन्द्र यादब का यह कहना कि 'अगली सदी दलित रचनाकारों की होगी' सच लगता है।

**संदर्भ सूची:-**


1. दलित साहित्य, साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
2. दलित चेतना की कविताएँ (डॉ.रामचन्द्र/स.डॉ. प्रवीण कुमार)
3. मूकनायक पत्रिका (डॉ. अम्बेडकर के लेख)
4. हंस पत्रिका (राजेन्द्र यादव)
5. युद्धतर आम आदमी पत्रिका
6. हिंदी दलित कविता, पश्यन्ति, अंक अप्रैल-जून,1998 (डॉ.एन.सिंह)

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# ब्रज क्षेत्र की लोक संस्कृति के विविध आयामों में शिक्षा

**मनोज कुमार**
**डॉ. अंजू लता**

1. शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
2. एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी

**सारांश**:-ब्रज की लोक संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है। इस लोक संस्कृति की अजस्र अमृतधारा युगों-युगों से ब्रज प्रदेश में प्रवाहित होती रही है। इस संस्कृति ने जहाँ ब्रज के लोगों को उत्साही और कर्मठ बनाया है, वहीं उनके हृदय में आनन्द की अनुभूति, सादगी, सरलता और सहिष्णुता का बीजारोपण किया है। ब्रज लोक संस्कृति का दर्शन उसके लोक सहित्य में मिलता है, जो ब्रज के लोकगीतों, लोक कथाओं, लोक नाट्यों आदि से समृद्ध है तथा ब्रज भूमि के लोक नृत्यों, तीर्थो, आराध्य की आराधनाओं, परिक्रमाओं, पर्व-उत्सवों और मेलों आदि ने उसकी सम्पन्नता में कई गुना अभिवृद्धि की है। यद्यपि ब्रज लोक संस्कृति की परम्परा में वो पहले जैसा आनन्द प्रायः देखने को नहीं मिलता। भौतिकवादी संस्कृति के उदय ने आज के लोगों को एकाकी बनाने का प्रयास किया। पुरानी परंपरायें कुछ शिथिल होती दिखाई पड़ रही हैं। परन्तु कुछ ब्रज लोक संस्कृति प्रेमी, लेखक और साहित्यकार ब्रज के लोक साहित्य और लोक संस्कृति का रक्षण करने के लिये कटिबद्ध हैं। उन्होंने ब्रज की लोक संस्कृति के आधार स्तम्भ लोक साहित्य को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है।

ब्रज की लोक संस्कृति की इसी सम्रद्ध परंपरा को बचाये रखने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है क्योंकि शिक्षा और संस्कृति एक-दूसरे को गहराई से प्रभावित करते हैं। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन काल से आज तक शिक्षा के कारण ही संस्कृति में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन संभव हुआ। शिक्षा समाज के जीवन को नये मानदण्डों के अनुसार अनुशासित करती है। शिक्षित व्यक्ति अपने ज्ञान, कौशल, मूल्य एवं आदर्श के आधार पर संस्कृति निर्माण, सुधार एवं विकास में सहायता देता है। इसी कारण समय-समय पर शिक्षा नीतियों में परिवर्तन करके वर्तमान परिप्रेक्ष्य के अनुसार शिक्षा को और अधिक प्रासंगिक बनाने का प्रयास किया जाता है। इस सम्बन्ध में डॉ0 जाकिर हुसैन ने कहा है, ''शिक्षित व्यक्ति की विशेष निशानी यह होनी चाहिये कि उसमें अपनी संस्कृति के पति एक धनात्मक दृष्टिकोण हो।''

लोक संस्कृति की अपनी अलग पहचान व विशेषता है जिसका सम्बन्ध किसी देश व क्षेत्र विशेष के सामान्य जन समुदाय से होता है। समाज में प्रचलित विभिन्न क्रिया-कलाप, आचार-विचार, संस्कार, प्रथायें, कर्मकाण्ड, आस्था एवं विश्वास लोक संस्कृति के आधारभूत तत्व हैं।

किसी क्षेत्र की लोक संस्कृति उस क्षेत्र को अलग पहचान दिलाती है। लोक संस्कृति के द्वारा समाज की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था का प्रवाह सामाजिक रूप से निरन्तर गतिशील रहता है। संस्कृति व्यक्ति एवं समाज के विकास का परिचायक होती है। लोक जीवन इसी संस्कृति का अक्षय भण्डार है। लोक संस्कृति, लोक परम्पराओं, लोक साहित्य, लोक नाट्य, लोकगीत एवं लोककला में सहज आत्मीयता के साथ उल्लसित है। लोक परम्पराओं के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के व्रत-त्यौहार, प्रथायें, मेले, रूढ़ियाँ एवं संस्कार आते हैं जिसके कारण समाज में एकनिष्ठता व एकरूपता बनी रहती है। इसकी भाषा लोक भाषा होती है। लोक साहित्य के अन्तर्गत लोक गाथा, लोकगीत, पहेलियाँ एवं लोकोक्तियाँ आती हैं। लोक-नाट्य का लोक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत एक व्यवस्थित अवधारणा के रूप में लोक संस्कृति को प्रतिपादित करने का श्रेय मुख्य रूप से रॉबर्ट रेडफील्ड को जाता है। आरम्भ में लोक संस्कृति की अवधारणा के लिये कृषक संस्कृति शब्द का प्रयोग इन्होंने ही किया। लोक संस्कृति का वास्तविक अर्थ उस संस्कृति से है जो ग्रामीण और विशेषकर कृषक समाज में उदय होती है और उसी समाज में विकसित होती है, विभिन्न विद्वानों ने लोक संस्कृति की परिभाषा निम्न रूप में दी है-

रेडफील्ड के अनुसार-''यह एक ऐसा समाज है जिसका आकार छोटा होता है, जिसमें अकेलापन, अशिक्षा, समानता, समूह दृढ़ता की भावना एवं जीवन का रुढ़िगत ढंग पाया जाता है।''

डॉ. सम्पूर्णानन्द के अनुसार-''लोक संस्कृति वह जीती-जागती वस्तु है जिसके द्वारा लोक की संस्कृति बोलती है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि लोक समाज की संस्कृति ही लोक संस्कृति कहलाती है। इस संस्कृति में रूढ़ियों का प्रभाव अधिक होता है इसमें परिवार, नातेदारी, धर्म, पड़ौस आदि का अधिक महत्व होता है। लोक संस्कृति का कोई लिखित स्वरूप नहीं होता है बल्कि यह मौखिक रूप से ही अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित होती है। लोक संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की निधि नहीं है, यह सम्पूर्ण समाज के सहयोग से उत्पन्न हुई है। लोक संस्कृति में सामूहिक प्रेरणा, सामूहिक हिस्सा लेने की भावना पाई जाती है, लोक संस्कृति अव्यवसायिक होती है। इसकी अभिव्यक्ति व प्रदर्शन का उद्देश्य मुनाफा कमाना नहीं होता है। लोक समाज में व्यक्तियों के व्यवहार कानून से उतने प्रभावित नहीं होते जितने कि परम्पराओं तथा धार्मिक नियमों से प्रभावित होते हैं। यहाँ बुद्धिजीवी जैसा न तो कोई पृथक वर्ग होता है और न ही वैज्ञानिक चिन्तन का प्रभाव होता है। इस दृष्टिकोण से लोक समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं से समन्वय का नाम ही लोक संस्कृति है। इसमें प्रमुख-प्रमुख प्रथायें, परम्परायें, लोकाचार, कर्मकाण्ड और अनुष्ठान आदि सामान्यतः

मौखिक रूप से ही प्रचलित होते हैं। लोक संस्कृति में विविधता भी निहित होती है। चूँकि लोक संस्कृति का क्षेत्र अपने-अपने स्थानीय समूहों तक ही सीमित रहता है इसलिये विभिन्न क्षेत्रों में थोड़ी-थोडी सी दूरी पर भी इसके स्वरूपों में विविधता पाई जाती है।

**ब्रज क्षेत्र एवं संस्कृति**:-वस्तुतः जहाँ-जहाँ ब्रज भाषा बोली जाती है, जहाँ पर बृज संस्कृति फल-फूल रही है और ब्रज लोक साहित्य का विकास हो रहा है। वह क्षेत्र ब्रज क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। आधुनिक ब्रज भाषा लगभग एक करोड़ तेईस लाख जनता के द्वारा बोली जाती है तथा इसकी परिधि लगभग अड़तीस हजार वर्गमील में फैली हुई है, ब्रज क्षेत्र की सीमा केवल चौरासी कोस नहीं है, यह उत्तर प्रदेश ही नहीं मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा आदि के उन क्षेत्रों तक फैली हुई है जो ब्रज प्रदेश के समीप पड़ते हैं। कानपुर, ग्वालियर, धौलपुर, करौली, सवाई माधौपुर, पलवल, एटा, इटावा, मैनपुरी, बुलन्दशहर, अलीगढ़, खुर्जा आदि ब्रजभाषी स्थान है, इन स्थानों पर हमें उसी लोक संस्कृति के दर्शन होते हैं जो बृज चौरासी कोस में मिलते हैं, यहाँ की लोक परम्पराओं, लोक गाथाओं और लोकोत्सवों में काफी हद तक समानता पायी जाती है। भाषा भी लगभग एक जैसी है।

ब्रज क्षेत्र की संस्कृति अपने वैशिष्ट्य के चलते हमारी अमूल्य धरोहर है, राधा और कृष्ण ब्रज के लोकजीवन तथा संस्कृति के केन्द्र है, कृष्ण नटखट, लीलाधारी, लुभावने, सौन्दर्य व प्रेम के साक्षात रूप, कोमलता के आकार और लोकरक्षक है। ब्रज की लोक संस्कृति मूलतः कृषि समाज से जुड़ी है, ग्रामीण समाज के अधिकांश कार्य उत्सव, मेले और हाट, पूजा-पाठ, लोकनृत्य, लोकगीत, लोकनाट्य आदि कृषि से सम्बन्धित हैं।

**ब्रज क्षेत्र की प्राचीन एवं वर्तमान लोक संस्कृति**:-प्राचीन काल में ब्रज लोक संस्कृति का स्वरूप वर्तमान स्वरूप से काफी हद तक भिन्न था, पहले कलाकार अपनी कला को जीवन के आनन्द के लिये और जीवन की सम्पूर्णता के लिये बिना किसी लोभ के प्रस्तुत करता था लेकिन आज का कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन लोभ और स्वार्थ के वशीभूत होकर करता है। आज के भौतिकवादी युग में धन, वैभव, व्यक्तिगत स्वार्थ आदि ने कलाकार को व्यावसायिक बना दिया है। आजकल लोक कलाएँ, लोक परम्पराएँ, उत्सव, पर्व, लोक गीत आदि के स्वरूप में भी थोड़ा बहुत परिवर्तन देखने को मिलता है। आजकल लोक कला का प्रदर्शन औपचारिक सा लगने लगा है। इसी कारण लोक संस्कृति के संरक्षण हेतु कई साहित्यकार एवं विद्वानों ने संस्कृति के संरक्षण के अनेकानेक प्रयास किये हैं। इस दौरान विभिन्न संस्थाओं का भी निर्माण हुआ है जैसे- ब्रज संस्कृति शोध संस्थान वृन्दावन जिसकी स्थापना 18 अप्रैल 2010 को हुई। ब्रज लोक संस्कृति एवं सेवा संस्थान मथुरा आदि भी इसके उदाहरण हैं। प्राचीन समय में लोग स्वांग, कठपुतली, नाच, आल्हा, श्रवण आदि से मनोरंजन करते थे, आजकल ग्रामीण समुदाय में लोकगीतों और लोक कथाओं के स्थान पर फिल्मी गानों की धुन सुनाई पड़ती है। प्राचीन काल में लोक संस्कृति की सरलता उसकी मुख्य विशेषता थी परन्तु आज लोक संस्कृति में जटिलता आ गयी है।

**ब्रज की लोक संस्कृति में शिक्षा**:-संस्कृति के अभाव में शिक्षा निस्सार और निष्प्रयोज्य है। यदि किसी समाज की शिक्षा में कोई विशेषता मिलती है तो उसका एकमात्र कारण उस समाज की संस्कृति है। वस्तुतः प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति के अनुरूप ही शिक्षा की व्यवस्था करता है। संस्कृति के हस्तान्तरण में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह सत्य है कि संस्कृति की शिक्षा समाज को अध्यापक द्वारा दी जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृति को हस्तान्तरित करने का कार्य शिक्षक को सौंपा गया है। संस्कृति के माध्यम से व्यक्ति का बौद्धिक, चारित्रिक, संवेगात्मक और आध्यात्मिक विकास होता है। लोक संस्कृति किसी भी समाज के इतिहास का विशुद्ध सार है। यह उन रीतियों और परम्पराओं से मिलकर बनती है जिसमें उस समाज के लम्बे समय के अनुभवों का निचोड़ होता है। अतः कोई समाज अपनी संस्कृति से अलग होकर अपना नुकसान ही करता है। सही अर्थ में शिक्षा के अन्तर्गत कला और मानव अभिव्यक्तियों के अन्य सांस्कृतिक रूपों का समावेश किया जाना चाहिये। ब्रज की लोक संस्कृति में शिक्षा अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है जिसके फलस्वरूप आज भी ब्रज की लोक संस्कृति अपने आप में विशिष्ट बनी हुयी है और ब्रज को एक अलग पहचान देती है। शिक्षा को अगर हम ज्ञान, कल्पनाशक्ति एवं रचनाशीलता के विकास का माध्यम मानें तो इनके विकास में हर समाज की अपनी संस्कृतियों के प्रगतिशील तत्वों की बड़ी भूमिका होती है। ब्रज की लोक संस्कृति के विविध आयामों में शिक्षा का स्वरूप निम्न है-

1. **ब्रज के लोकोत्सव में शिक्षा**:-ब्रज की लोक संस्कृति में विभिन्न प्रकार के उत्सव मनाये जाते हैं जैसे-बांसुरी वादन, स्वांग, ब्रज की होली, रसिया, चरकूला नृत्य, मटका नत्य, लावनी आदि प्रमुख लोकोत्सव हैं। ब्रज उत्सव में रासलीला भी एक प्रमुख नृत्य है जो राधा-कृष्ण की अनन्त प्रेम की कहानी को दर्शाता है जो हमें आध्यात्मिक उन्नति की ओर अथवा आध्यात्मिक प्रेम की ओर आकर्षित करने की शिक्षा देता है। विभिन्न प्रकार के लोकोत्सव हमारे हृदय के अन्तस्थल को प्रभावित करते हैं और हमें जीवन में अपनी संस्कृति को बचाये रखने के लिये प्रेरित करते हैं।

2. **ब्रज के लोक नृत्य एवं लोकगीतों में शिक्षा**:-ब्रज में विभिन्न प्रकार के लोकनृत्य एवं लोकगीत प्रचलित हैं। जिनमें ब्रज का चरकुला नृत्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त है। इसके अन्तर्गत महिलायें अपने सिर पर सात मटके रखकर और उसके ऊपर जलता हुआ दीया रखकर कृष्ण की भक्ति के गीत गाती हैं और नृत्य करती हैं जिसको देखकर सभी दर्शक मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। इस नृत्य के दौरान नगाड़ों और ढोल के साथ रसिया का गायन भी किया जाता है।

ब्रज के लोक नृत्यों में देश के आठ शास्त्रीय नृत्यों में कत्थक की एक विशिष्ट पहचान है। जिसमें नृत्य करने वाला व्यक्ति विभिन्न प्रकार की मुद्राओं के साथ और स्वांग रचाकर लय के साथ नृत्य करता है, इस दौरान गजल और ठुमरी भी गायी जाती है तथा तबला और पखावज आदि की संगत भी मिलती है। ब्रज के लोकगीतों में वहाँ का सम्पूर्ण जीवन प्रतिबिम्बित होता है। ब्रज के सुख-दुख, आमोद-प्रमोद, आनन्द-उत्साह आदि की अभिव्यक्ति इन लोक गीतों के माध्यम से होती है। इनके माध्यम से लोक जीवन की सफल अभिव्यक्ति होती है। ब्रज के विभिन्न प्रकार के लोकगीत जैसे संस्कार गीत, ऋतु गीत, धार्मिक गीत एवं श्रम गीत तथा कथागीत आदि के माध्यम से व्यक्ति लोक गीतों के प्रति रसास्वादन की अनुभूति करता है। जिससे व्यक्ति के हृदय में संवेदना का प्रादुर्भाव होता है ।

3. **ब्रज के लोक साहित्य में शिक्षा**:-ब्रज के लोक साहित्य में कान्हा की बांसुरी के स्वर है, राधा के गीतों का श्रृंगार है, यहाँ की गाली में भी कन्हैया का माधुर्य भरा है, उल्हाने और आंसुओं से भरे ब्रज के इस लोक साहित्य से हमें सम्पूर्णता से जीवन जीने की शिक्षा मिलती है। ब्रज में लोक साहित्य भिन्न-भिन्न रूपों में बिखरा पड़ा हुआ है। ग्रामीण कम पढ़े लिखे लोग भी लोक साहित्य को रचने में माहिर हैं व अपने आस-पास के जीवन से लोक

जीवन की कथाओं को अपनी भाषा में सम्प्रेषित करने में सक्षम हैं। लोक साहित्य हमें जीवन को नये तरीके से जीने और नयी भावनाओं के प्रति आकर्षित करता है।

**4. ब्रज की लोक परम्पराओं में शिक्षा**:-ब्रज की लोक परम्पराओं में नाट्य परम्परा, रास की मंचीय परम्परा एवं ब्रज की सांझी परम्परा से जुड़ा विस्तृत साहित्य आज ब्रज मण्डल ही नहीं अपितु भारतवर्ष के विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थागारों में देखा जा सकता है। वृन्दावन शोध संस्थान द्वारा ब्रज की कला परम्पराओं को संरक्षित करने के निमित्त आयोजित प्रकाशन श्रृंखला के इस पुष्प में सांझी से जुड़े साहित्यिक पक्ष का समावेश विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहों के सहयोग से किया गया है। कला परम्पराओं की समृद्धि ने ब्रज के सांस्कृतिक धरातल को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्रदान की है, राधा-कृष्ण की लीलाओं से अनुप्राणित ब्रज संस्कृति में उनकी व्याप्ति किसी न किसी रूप में सहजता से देखी जा सकती है। उल्लास अथवा उत्सव धर्मिता ब्रज के लोक जीवन का प्रधान तत्व है। ब्रज का सांझी उत्सव भारतीय जन-मन में एक नई उमंग का संचार करता है और भक्ति के प्रति व्यक्ति को समर्पित करता है।

**ब्रज की लोक संस्कृति के संरक्षण में शिक्षा की भूमिका**:-शिक्षा लोक संस्कृति के संरक्षण और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, शिक्षा के माध्यम से सांस्कृतिक ज्ञान और मूल्यों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाया जाता है। शिक्षा एक संस्कृति की परम्पराओं और रीति-रिवाजों के साथ-साथ सांस्कृतिक पहचान को व्यक्त करने के लिये इस्तेमाल की जाने वाली भाषा और संचार के अन्य रूपों को पारित करने में मदद करती है। यह व्यक्तियों को अन्य संस्कृतियों के रीति-रिवाजों, विश्वासों और मूल्यों के बारे में जानने और उनकी सराहना करने के अवसर भी देती है। शिक्षा लोगों को अपनी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के महत्व और दूसरों के साथ साझा करने की आवश्यकता को समझने में मदद करती है। शिक्षा व्यक्ति के लोक जीवन में अनुशासन उत्पन्न करती है जिससे व्यक्ति अपनी परम्पराओं और उत्सवों के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण बना पाने में सक्षम होता है और वह अपनी संस्कृति की अमूल्य धरोहर को सहेजने का निरन्तर प्रयास करता है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन को सम्पूर्णता से जी पाता है और अपनी लोक संस्कृति के प्रति अडिग और कर्तव्यनिष्ठ बना रहता है और नित्य प्रति अपनी संस्कृति के उत्तरोत्तर विकास एवं संरक्षण करने के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हो पाता है।

शिक्षा लोक जीवन में विभिन्न संस्कारों को जीवित रखती है अपने तीज-त्यौहारों के प्रति पूर्णतः सजग बनाने का प्रयास करती है, शिक्षा विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति आदर और विश्वास की भावना को सहेजती है, विभिन्न पूजा स्थलों के संरक्षण के प्रति क्षेत्र विशेष के व्यक्तियों को सजग बनाती है। विभिन्न धर्म ग्रन्थों के प्रति आदर उत्पन्न करती है। शिक्षा हमारे ब्रत, उपवास और उपासना के प्रति अटूट विश्वास जगाने में हमारी मदद करती है। अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा और लोक संस्कृति में घनिष्ठ सम्बन्ध है जिसके द्वारा शिक्षा और लोक संस्कृति दोनों का संवर्द्धधन होता है। ब्रज भूमि भारत के सांस्कृतिक पक्ष का हृदय है, इस भूमि का नाम स्मरण मात्र राधा-कृष्ण और उनकी लीलाओं का सुखद आनन्द प्रदान करने वाला है। श्री कृष्ण की लालाओं के साक्षी यहाँ के वन, पर्वत, सरिता, कुण्ड, सरोवर, पशु-पक्षी एवं रज कण सभी भागवत स्वरूप हैं। ब्रज मण्डल के सम्बन्ध में यह लोक मान्यता युग युगान्तर से प्रचलित है। ब्रज के इसी वैशिष्ट्य ने इसे कहीं अधिक सांस्कृतिक और पूजनीय बना दिया है।

**सन्दर्भ सूची**:-


1. गौड़, डॉ0 रामशरण, ब्रज लोक साहित्य और लोक संस्कृति, अनिल प्रकाशन, 2016
2. चक्रवर्ती, शेफाली, ब्रज लोक साहित्यः नव चिन्तन, हिन्दी बुक सेन्टर नई दिल्ली।
3. चतुर्वेदी, नर्मदेश्वर, लोक संस्कृति की आत्मा, सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागराज।
4. डॉ0 सत्येन्द्र, ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।
5. सिंह, प्रो0 राधेश्याम एवं रावत, डॉ0 पवन कुमार, लोक साहित्य एवं संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज।

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# भारत में पंचायती राज व्यवस्था का विकास : ऐतिहासिक विश्लेषण 'एक देश एक चुनाव'

**डॉ. मुकेश कुमार यादव**
**ममता पाण्डेय**

1. एसोसिएट प्रोफेसर, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान
2. लेक्चरर, राजनीति विज्ञान, न्यू लूक पी. जी. कन्या महाविद्यालय, लोधा, बांसवाड़ा, राजस्थान

**शोध सार :**-शासन व्यवस्था मुख्य रूप से विकेंद्रीकरण पर आधारित होती है। शासन व्यवस्था ऊपरी स्तर पर जब तक सफल नहीं हो सकती जब तक उसके निचले स्तर का योगदान न हो। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था भारत की एक प्रमुख विशेषता है। भारत के पूर्व काल से ही निचले स्तर का योगदान शासन व्यवस्था को मजबूती प्रदान करता रहा है। पूर्वकाल में निचले स्तर के इस योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

**प्रस्तावना :**-भारत के प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों में पंचायत अथवा पंचायती शब्दों का उल्लेख किया गया है। भारतीय व्याख्याकारों के अनुसार सामाजिक संरचना और जीवन को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए प्राथमिक संस्थाओं ग्राम, पंचायत, संयुक्त परिवार प्रणाली का निर्माण किया गया था। प्राचीन समय से ही भारतीय ग्राम प्रशासन की केंद्रबिंदु रही है। भारत गांवों का देश है। उसकी तीन चौथाई जनसंख्या गांव में निवास करती है। जिंस देश की तीन चौथाई जनसंख्या गांव में निवास करें तो उसके विकेंद्रीकरण में उनका जमीनी स्तर पर योगदान आवश्यक हो जाता है।

पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम तहसील तालुका और जिला आते हैं। पंचायती राज व्यवस्था कोई नई नहीं है, बल्कि वैदिक काल से ही इस व्यवस्था का अस्तित्व विद्यमान हैं। पंचायत शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द पंचायतन से हुई है, जिसका अर्थ है पांच व्यक्तियों का समूह। संस्कृत भाषा के ग्रंथों के आधार पर किसी आध्यात्मिक पुरुष सहित पांच पुरुषों के समूह को पंचायतन कहा जाता था। परंतु धीरे धीरे पंचायत की आध्यात्मिक वाली अवधारणा की जगह वर्तमान की निर्वाचित सभा में ले ली। जिनकी संख्या प्रधान सहित पांच होती है और जिसका दायित्व स्थानीय स्तर के विवादों का निपटारा करना होता है। प्राचीनकाल से ही स्वशासन की इकाई के रूप में ग्रामीण पंचायतों का अपना महत्त्व रहा है। डॉ राधा कुमुद मुखर्जी ने स्थानीय स्वशासन की इस इकाई को प्रजातंत्र का देवता कहा है। उनके अनुसार ग्राम पंचायतों का निर्माण जनता के समान अधिकारों व स्वतंत्रता के लिए निर्मित किया गया ताकि जनता के बीच समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व जैसी भावना बनी रहे।

**प्राचीन काल में पंचायत राज व्यवस्था :**-पंचायतराज की प्राचीनता का प्रमाण हमें ऋग्वेद और अर्थव् वेद में भी दिखाई देता है। भारत में स्थानीय स्वशासन की निचले स्तर की इस इकाई के प्रारंभ का श्रेय राजा पृथु को जाता है। सभ्यता के विकास के आधार पर यह कहना उचित होगा कि भारत जैसे देश में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया का आरंभ आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व हो चुका था।

**वैदिक युग में पंचायत राज व्यवस्था :**-वैदिक काल में भी पंचायतों का अस्तित्व था। ऐसे बहुत से साक्ष्य हैं जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल से ही ग्राम सभाओं का गठन हो चुका था।

सा उदक्रमात् सा समायां न्यक्रामत ।
सा उदक्रमात् सा समितौयां न्यतक्रामत ।
सा उदय क्रामत साडडमन्त्रणे् न्यक्रामत ।

अर्थात जनशक्ति प्रभावित होकर ग्राम सभा, राष्ट्र समिति और मंत्रिमंडल के रूप में सबके समक्ष प्रकट हुई। अर्थवेद के अंतर्गत लिखा गया है।

ये ग्रामा यदरण्यं या सभा अधिभूम्याम
ये संग्रमाः समितियस्तेषु चारू वेदम ते

अर्थात पृथ्वी पर जो ग्राम वन सभाएं और समितियां हैं उन सभी में हमें वाणी में संयम के साथ साथ सभी को साथ लेकर चलने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। सभा एवं समिति एक उच्च कोटि की निर्वाचित शासनप्रबंध की सभाएं थी। इनके अतिरिक्त ऋग्वेद में विद्थ शब्द का प्रयोग कई बार आया है, जिसका अर्थ है जत्था। उत्तर वैदिक काल में भी इस तरह की व्यवस्था विद्यमान थी, जिसे माध्यम से राजा ग्राम प्रशासन करता था।

**मनुस्मृति में पंचायत राज व्यवस्था :**-मनुस्मृति मे मनु ने भी स्थानीय स्वशासन के महत्त्व को जानते हुए स्थानीय स्वशासन के व्यवस्थित स्वरूप पर बल दिया है। शासन की शक्तियां एवं कार्यों के विकेंद्रीकरण के महत्त्व का भी उल्लेख मनुस्मृति में दिखाई देता है। स्थानीय स्वशासन के महत्त्व के अनुरूप राज्य में शक्तियों के विकेंद्रीकरण एवं प्रजा में स्वशासनकी प्रवृत्ति पर मनु ने बल दिया है।

**महाकाव्य काल में पंचायत राज व्यवस्था :**-वाल्मीकि रामायण और महाभारत के सभापर्व में भी स्थानीय प्रशासन पुरवा एवं जनपद नामक दो स्थानीय स्तरों का उल्लेख मिलता है। रामायणकालीन शासन तंत्र में सभा मंत्रीपरिषद तथा शासनाधिकार ये तीन अंग थे। इन तीनों की सहायता से शासन सुचारू रूप से चलता था। उस समय राज्यसभा द्वारा सभा को परिषद समिति या केवल सभा अंश कहते थे। सभा के सदस्यों को सुभाश कहते थे। रामायण काल में भी स्थानीय स्वशासन के महत्त्व को समझा जाता था और उनकी भागीदारी का भी पूरा ध्यान रखा गया था। महाभारत के शांतिपर्व में भी जनपदों के ग्राम स्वशासन और पंचायतों के निर्वाचन तथा गठन का उल्लेख किया गया है। उस समय पंचायत अधिकारियों में पुरोहित, सभापति और ग्रामीर्णी तथा ग्राम योजक प्रमुख हुआ करते थे। ग्रामीण ही पंचायत का मुखिया होता था।

**बौद्ध काल में पंचायत राज व्यवस्था :**-गांव के शासक को ग्रामभोजक कहा जाता था। सभा ग्राम संगठन का एक महत्वपूर्ण अंग थी। इस सभा में गांव के

वृद्ध लोग बैठते थे। ग्राम भोज का चुनाव वहाँ के ग्रामवासी करते थे।

**मौर्य काल में पंचायतीराज व्यवस्था**:-कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ग्राम पंचायतों या स्थानीय स्वशासन व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है। कौटिल्य ने प्रशासन एवं राजस्व को एकत्रित रखने की दृष्टि से ग्रामीण इकाइयों को उतना ही महत्व दिया जितना केंद्रीय इकाइयों को। अर्थशास्त्र के अनुसार एक ग्राम के मुखिया को ग्रामवृद् और पांच गांव के मुखिया को पंचग्राम ई कहते थे। कई ग्रामों को मिलाकर एक जनपद का निर्माण किया जाता। प्रशासनिक रूप से जनपद के अस्तित्व का अपना ही महत्व था। ग्रामसभा की सभी गतिविधियों का केंद्र बिंदु ग्राम ही होती थी।

**गुप्तकालीन पंचायत राज व्यवस्था**:-गुप्तकालीन शासन व्यवस्था विकेंद्रित थी। समस्त साम्राज्य की शासन व्यवस्था चार भागों में विभक्त की गयी थी-केंद्रीय शासन, प्रांतीय शासन, जिले का शासन और ग्रामीण शासन। हर्ष चरित्र के अनुसार प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। जिसका प्रशासन ग्राम सभा द्वारा चलाया जाता था। ग्राम प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी ग्रामीणी या ग्राम पति तथा महतर होता था। उनकी सहायता के लिए एक ग्राम पंचायत होती थी ।

**मध्यकालीन पंचायत राज व्यवस्था**:-मध्यकाल में स्थानीय स्वशासन के अनेक साक्ष्य या संकेत मिलते हैं। जैसे कि सल्तनत काल के दौरान राज्यों को प्रांतों में विभाजित किया गया था। साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि ग्राम स्तर पर शासन के लिए तीन प्रमुख अधिकारियों को नियुक्त किया गया था। मुकादम, पटवारी, चौधरी। सल्तनत काल में भी स्थानीय स्वशासन का महत्व दिखाई देता है। दिल्ली साम्राज्य की विशालता इसके कारण उन्हें प्रांतों में विभक्त किया गया था। उस समय प्रांतों को इक्ता कहा जाता था। इन प्रांतों को पर गुणों तथा परगनों को ग्राम में विभक्त किया गया था। प्रांतों के प्रमुख अधिकारी को सूबेदार। परगने के प्रमुख अधिकारी को आमाल तथा गांव के अधिकारियों को लंम्बदार पटवारी या चौकीदार कहा जाता था।

**मुगलकाल में पंचायतराज**:-मुगलकाल के दौरान ग्राम पंचायत गांव के बुजुर्ग की एक सभा होती थी। प्रायः वे गांव के महत्वपूर्ण लोग होते थे।ं मुगलकाल में भी प्रशासन को सरकार एवं अनेक छोटे जिलों में बांटा गया था। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई को परगना कहते थे। उन्हीं परगनों को छोटे छोटे गांव में विभक्त किया गया था। उन्हीं गांव या पंचायतों के मुखिया को मुकदम या मंडल कहते थे। अफ़गानों एवं मुस्लिम शासकों ने प्रशासन व्यवस्था जो पहले से चली आ रही थी, उनमें किसी तरह का भी परिवर्तन करना उचित नहीं समझा। अकबर के समय में पंचायती राज संस्थाओं में काफ़ी हद तक एक नैतिक व प्रशासनिक सहयोग प्रदान की गई थी।

**दक्षिण भारत में पंचायत राज व्यवस्था**:-उस समय की राजनीति में जितनी उथल पुथल उत्तर भारत में दिखाई देती है, उतनी ही स्थिरता दक्षिण भारत में दिखाई देती है। चोल साम्राज्य स्थानीय स्वशासन एक अच्छी विशेषता प्रस्तुत करता है। चोल साम्राज्य अपनी स्थानीय स्वशासन के लिए जाना जाता है। लोकतंत्र की भाँति स्थानीय स्वशासन की जवाबदेही राज्य की न होकर स्वयं स्थानीय समितियों व सभाओं की होती थी। अभिलेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत भी अपने स्थानीय स्वशासन के लिये सजग रहा। चोल के अभिलेखों आदि से ज्ञात होता है कि शासन सुविधा की दृष्टि से सारा राज्य अनेक मंडलों में विभक्त किया गया था। मंडल को कोट्टम या वळनाडुओ में विभक्त किया गया था। इसके बाद शासकीय परंपरा में नाड़ो जिला कुर्रम ग्राम ग्रह एवं ग्राम थे। चेर राज्य काल में इनका शासन जन सभाओं द्वारा होता था। उत्तरमेरूर से प्राप्त अभिलेखों से ग्राम सभा व उनके कार्यों का विस्तृत उल्लेख पाया जाता है। उत्तरमेरूर में ग्राम शासन सभा की पांच उपसमितियों का उल्लेख मिलता है। दक्षिण भारत की केंद्रीयकरण की प्रक्रिया भी अछूती नहीं रही है। कोट्टम व बल नाडु, जिला, नाडु तालुका तथा उप्र ग्राम में विभाजित किया गया था। दक्षिण भारतीय प्रशासन की प्रमुख तत्व ग्राम सभा या समिति होती थी।

**ब्रिटिश शासनकाल में स्थानीय स्वशासन**:-1786 में ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य लॉर्ड वर्क उस समय के भारत के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के खिलाफ महाभियोग प्रस्ताव लेकर आए थे। जिसमें महाभियोग का कारण था कि भारत में गांव स्तर की व्यवस्था का जो परंपरागत व मजबूत स्वरूप था, उसका हनन हो रहा है। 1830 में जनरल मैटकाफने ग्राम स्तर की पंचायत व्यवस्था पर अपना रिपोर्ट ब्रिटिश पार्लियामेंट में प्रस्तुत किया। जिसमें लिखा था कि भारतीय ग्राम समुदाय छोटे छोटे गणराज्य है जो पूरी तरह आत्मनिर्भर हैं और अपने लिए सभी आवश्यक सामग्री की व्यवस्था कर लेते हैं। इनके अधिकारों एवं प्रबन्धों पर किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं हुआ। भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड मेयो को प्रशासनिक दक्षता के लिए शक्तिओं के विकेंद्रीकरण की आवश्यकता महसूस हुई।

ब्रिटिश काल में 1880 से 1884 के मध्य लॉर्ड रिपन का कार्यकाल पंचायतीराज का स्वर्ण काल माना जाता है। लॉर्ड रिप्पन को भारत में स्थानीय स्वशासन का जनक माना जाता है। 1882 में लॉर्ड रिपन ने स्थानीय स्वशासन प्रस्ताव में स्थानीय निकायों को बढ़ावा देने का कार्य किया। 18 मई 182 को प्रस्तुत स्थानीय स्वशासन प्रस्ताव में बहुमत पर आधारित निर्वाचित गैर सरकारी सदस्यों का स्थानीय बोर्ड निर्माण पर ध्यान दिया। इसे भारत में स्थानीय लोकतंत्र का मैगाकाटा माना जाता है। 16 मई 1918 को वित्त केंद्रीयकरण आयोग के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने ग्राम पंचायतों के गठन, स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्ष, गैर निर्वाचित सरकारी सदस्य, बजट निर्माण आदि बातों पर ध्यान दिया। भारत सरकार अधिनियम 1900 के अनुसार द्वैध शासन प्रणाली को स्थापित करने का प्रयास किया। द्वैध प्रणाली के माध्यम से स्थानीय स्वायत्त शासन को प्रांतीय सरकारों के अधिकार क्षेत्र में दिया गया। इसे प्रांतीय सरकारों को निर्वाचित मंत्रियों के अधीन किया गया था। इस अधिनियम के आने से इस स्थानीय स्वशासन भारत सरकार के हाथों से निकलकर प्रांतीय स्वायत्तता के नियंत्रण में जाने से जो स्थानीय स्वशासन की एकरूपता दिखाई देती थी अब वह पूरी तरह समाप्त हो चुकी थी। इस एकरूपता की समाप्ति के कारण सभी प्रान्त, जिलों एवं नगर पालिकाओं के लिए पृथक पृथक नियम बनाए गए। इसी क्षेत्र के तहत 1927 में साइमन कमीशन की अध्यक्षता में प्रांतों के कार्यकरण की परीक्षण के लिए एक आयोग का गठन किया गया। 1932 में गाँधी जी द्वारा स्थानीय स्व शासन को मजबूत करने की दृष्टि से ग्राम स्वावलंबन कार्यक्रम की शुरुआत की गई। 1935 से 37 के मध्य भारतीय शासन अधिनियम का प्रांतीय भाग लागू करने के साथ साथ द्वैध शासन के स्थान पर प्रांतीय स्वायत्तता शासन स्थापित किया गया। प्रांतीय स्वायत्तता पहले एक प्रयोग मात्र के रूप में दिखाई दे रहा था। वही वह स्वशासन का अभिन्न अंग बन चुका था।

**स्वतंत्रता प्राप्ति के पंचायत की पंचायत राज व्यवस्था**:-स्वतंत्र भारत का कार्यभार संविधान सभा की देखरेख में किया जा रहा था। इस क्षेत्र में केंद्र एवं राज्य सरकारों के लिए योजना प्रस्तावित करने हेतु दो समितियों का गठन किया गया- संघीय समिति एवं प्रांतीय समिति। प्रांतीय समिति द्वारा बनाए गए संविधान के ढांचे में कहीं पर भी पंचायतीराज का उल्लेख दिखाई नहीं दे रहा था। लोकतंत्र के विकेंद्रीकरण एवं ग्रामीण उत्थान में पंचायत के महत्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता था। एक पक्ष इसका समर्थन कर रहा था। वही दूसरा

पक्ष जो अंबेडकर जी के पक्ष में था वह इसका बहिष्कार कर रहा था। स्वशासन की इकाई के रूप में ग्रामीण पंचायत के महत्व को देखते हुए गाँधी जी की मान्यता थी कि भारतीय ग्रामीण जीवन के पुनर्निर्माण हेतु ग्राम पंचायत को पुनः स्थापित किया जाना चाहिए। ग्राम पंचायत ही ग्रामीण क्षेत्रों में शासन प्रबंध सुरक्षा व उन्नति हेतु एकमात्र उपयुक्त संस्था है। डॉक्टर राधाकुमुद मुखर्जी ने तो पंचायत को प्रजातंत्र का देवता कह डाला। 1947 मे आजादी मिलने के साथ राज्य में सरकारों का गठन किया गया। इस के तुरंत पश्चात सबसे पहले उत्तर प्रदेश और फिर बिहार में स्थानीय स्वशासन सशक्त बनाने हेतु बिहार पंचायती राज अधिनियम 1947 का गठन किया। इस अधिनियम को 1948 में पूरे राज्य में लागू किया गया।

स्थानीय स्वशासन की इसी उधेड़बुन के तहत संविधान के अनुच्छेद 40 में पंचायतों का उल्लेख किया गया तथा अनुच्छेद 246 में पंचायत से संबंधित कानून बनाने का अधिकार राज्य विधान मंडलों को सौंपा गया। यद्यपि अनुच्छेद 40जो कि नीती निर्देशक सिद्धांतों में शामिल होने के कारण इन निकायों के लिए सार्वभौमिक एवं एक समान संरचना का अभाव देखा गया, क्योंकि नीति निर्देशक सिद्धांत एक बाध्यकारी सिद्धांत नहीं था। 2 अक्टूबर 1952 को गाँधी जयंती की पूर्व संध्या पर सामुदायिक विकास कार्यक्रम को लागू किया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम अमेरिकी विशेषज्ञ एलबर्ट मेयर की इटावा परियोजना से प्रेरित थी। 1953 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सहयोग हेतु राष्ट्रीय विस्तार सेवा को प्रारंभ किया गया। परंतु यह कार्यक्रम उतनी सफलता नहीं पा सका। इसकी विफलता के कारणों को जानने हेतु 1957 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। समिति द्वारा दी गई रिपोर्ट पता चला कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की विफलता का विशेष कारण लोगों की भागीदारी में कमी थी। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की इस योजना की शुरुआत 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में शुरू की गई। 1 नवंबर 1959 को आंध्र प्रदेश में तथा कुछ समय पश्चात असम, गुजरात, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र एवं उड़ीसा में भी लागू किया गया। वित्तीय व्यवस्था ओर चुनाव में एकरूपता न होने के कारण यह असफल रहा।

**अशोक मेहता, समिति**:–1977 में बलवंत राय मेहता समिति की विफलताओं के कारणों को जानने हेतु अशोक मेहता समिति का गठन किया गया। इस समिति ने में 32 सिफारिशों सहित अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

**जी वी के राव समिति**:–1985 में जी वी के राव की अध्यक्षता में ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम ओके लिये प्रशासनिक प्रबंधन हेतु एक समिति का गठन किया। इस समिति ने सत्ता विकेंद्रीकरण हेतु राज्य स्तर पर राज्य विकास परिषद, जिला स्तर पर जिला परिषद, मंडल स्तर पर मंडल पंचायत तथा ग्राम स्तर पर ग्राम सभा की सिफारिश की। इस समिति ने कहा कि पंचायतों का चुनाव नियमित हो। समिति ने विकेंद्रीकरण के तहत नियोजन एवं विकास कार्यक्रम में पंचायतों की भूमिका पर बल दिया। इस समिति ने विभिन्न स्तरों पर अनुसूचित जाति व जनजाति तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की सिफारिश की। परंतु इसकी सिफारिशों को अमान्य करार दिया गया।

**एल एम सिंघवी समिति**:–प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण में वृद्धि तथा पंचायतों का फिर से सशक्तिकरण हेतु में राजीव गाँधी सरकार ने एलएम सिंघवी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। पंचायतीराज को संवैधानिक दर्जा मिलना चाहिए, ऐसा सुझाव सिंघवी की तरफसे रखा गया। इस समिति द्वारा पंचायतों को सक्षम बनाने हेतु गांव के पुनर्निर्माण, पंचायत के वित्तीय सहयोग का सुझाव दिया। पंचायतराज संस्थाओं के चुनाव उन्हें भंग करने तथा उनकी कार्य प्रक्रिया से जुड़े न्यायिक विवादों के समाधान हेतु एक न्यायिक संस्था की स्थापना का सुझाव दिया गया।

**पी के थुंगन समिति**:–1988 में संसद की सलाहकार समिति के एक उप समिति के अध्यक्ष पीके थुंगन की अध्यक्षता में राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचे की जांच के उद्देश्य से इस समिति का गठन किया गया। इस समिति द्वारा भी पंचायत राज संस्थाओं को संवैधानिक ढांचे की मांग रखी गई। साथ ही त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था गांव, प्रखंड और जिला उपायुक्त बताया गया।

**वी एंन गॉड गिल समिति**:–वर्ष 1988 वीएन गॉड गिल की अध्यक्षता में पंचायतों को अधिक बेहतर बनाने हेतु एक समिति का गठन किया गया।

गॉड गिल और सिंधवी समिति की सिफारिशों के आधार पर तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की सरकार ने 1989 में पंचायती राज संस्थाओं को शक्ति व मजबूती प्रदान करने हेतु 64 वां संविधान विधेयक संसद में प्रस्तुत किया। अगस्त 1989 में यह विधेयक लोकसभा से पारित तो हो गया किन्तु राज्यसभा में कांग्रेस की सरकार इस विधेयक को पारित न करवा सके। अंततः नरसिम्हा राव ने एक बार फिर से पंचायती राज व्यवस्था के संवैधानिक ढांचे पर विचार किया। सितंबर 1991 में एक बार पुनः यह प्रस्ताव रखा गया। अंततः वे संवैधानिक संशोधन अधिनियम 1992 के रूप में पारित हुआ और 24 अप्रैल 1993 को यह प्रभाव में आया। इस तरह समय समय पर सरकार ने समितियों का गठन कर पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने हेतु कई प्रकार के कदमों को उठाने का प्रयास किया। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण में पंचायतराज संस्थाओं का अपना ही महत्व है। पंचायतों की परिकल्पना अपने देश की कोई नवीन प्रवृत्ति नहीं है, अपितु प्राचीन समय से ही यह मानव समाज का अभिन्न अंग बन गया है। भारत के ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्थाओं का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। पंचायतीराज संस्थाओं का महत्व और अधिक स्पष्ट हो जाता है कि भारत सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं को एक संवैधानिक दर्जा प्रदान किया और उसको सुसंगठित एवं प्रभावी बनाने के उद्देश्य से भारतीय संविधान में संशोधन करके पंचायती राज अधिनियम 1993 को क्रियान्वित करने का कार्य किया।

**संदर्भ सूची**:-


1. असलम एम पंचायती राज इन नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली 2007 पृष्ठ 13
2. सुरोलिया शंकर भारत में ग्रामीण शासन कॉलेज बुक डिपो, जयपुर 1975 पृष्ठ 25।
3. शर्मा डॉ. हरीशचंद्र भारत में स्थानीय शासन का इतिहास कॉलेज बुक डिपो जयपुर 1975 पृष्ठ 25।
4. पंवार मीनाक्षी पंचायती राज और ग्रामीण विकास क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी पृष्ठ 24–26।
5. शर्मा डॉ.के के भारत के राज्य प्रशासन कॉलेज बुक डिपो जयपुर 2001, पृष्ठ 3–4
6. मिश्रा, डॉ. महेंद्र कुमार पंचायती राज संस्था ए अतीत, वर्तमान और भविष्य कल्पना प्रकाशक पृष्ठ 69
7. त्यागी डॉक्टर शालिनी पंचायती राज व्यवस्था में सत्ता शक्ति का विकेंद्रीकरण नवजीवन पब्लिकेशन टोंक 2006 पृष्ठ 36
8. गोस्वामी डॉ.रवि पंचायतीराज इन इंडिया सिग्नेचर बुक इंटरनेशनल दिल्ली 2012 पृष्ठ 17 18

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# स्वतंत्रता आंदोलन की महान नायिका : अरूणा आसफ अली

डॉ. जितेंद्र कुमार बरबड़

सहायक आचार्य (विद्या संबल योजना) राजकीय महाविद्यालय, सुरजगढ़, झुंझुनू, राजस्थान

अरुणा आसफ अली का जन्म 16 जुलाई 1909 को वर्तमान हरियाणा( तत्कालीन पंजाब) के कालका नामक स्थान में हुआ था। इनका वास्तविक नाम अरुणा गांगुली था और इनका परिवार जाति से ब्राह्मण था। आसफअली से 1928 में विवाह के बाद इन्होंने पति के नाम को अपने नाम के साथ जोड़ लिया और अरुणा आसफअली के नाम से प्रसिद्ध हुई। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा नैनीताल व लाहौर में हुई। शिक्षा प्राप्त करने के बाद ये शिक्षिका बन गई और कोलकाता के गोखले मेमोरियल कॉलेज में अध्यापन कार्य करने लगी।

अरुणा आसफ अली का राजनीतिक जीवन में प्रवेश करने का आधार उनके पति आसफअली का राष्ट्र के प्रति प्रेम था। आसफअली ने ही अरुणा को इस नयी दुनिया से परिचित करवाया। इसके बाद अरुणा आसफ अली भी देश के लिए समर्पित अपने पति आसफ अली के साथ स्वतंत्रता आंदोलन के महासमर में कूद पड़ी। अरुणा जी के इस आंदोलन में जुड़ने के बाद पहला कदम गांधीजी द्वारा चलाया गया नमक सत्याग्रह आंदोलन रहा। जब 1930 गांधी जी ने नमक कानून के विरुद्ध अहमदाबाद से दांडी तक 24 दिन की पदयात्रा की। इस आंदोलन में महिलाओं ने भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। जब आसफअली को गिरफ्तार कर लिया गया तब अरुणा जी पूरी तरह से आंदोलन में कूद पड़ी। अरुणा ने अपने सक्रिय राजनीतिक सफ़र की शुरुआत 1857 ई. की क्रांति की उत्पत्ति एवं इसके महत्व पर जोशीले भाषण के साथ की। अरुणा जी को लोगों को भड़काने के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया गया और एक वर्ष के कारावास हेतु स्त्रियों की जेल लाहौर भेज दिया गया। अरुणा ने व्यंग्य करते हुये कहा जेल का कोई लिंग नहीं होता। अरुणा तथा उनके साथी जेल में भी भारत माता की जय, भगतसिंह जिंदाबाद के नारे लगाते थे।

5 मार्च 1931 को गांधी-इरविन समझौते के तहत राजनीतिक बंदियों को रिहा किया जा रहा था तब अंग्रेज सरकार ने अरुणा आसफको मुक्त नहीं करने का निर्णय लिया। इस बात के विरोध में अरुणाजी के सहयोगी बंदियों ने भी रिहा होने से स्पष्ट मना कर दिया। अंत में गांधीजी के आग्रह पर ये महिलाएं जेल से रिहा होने को राजी हुई। लोक नेताओं और राष्ट्रीय प्रेस ने अरुणा आसफअली के मुद्दे को जोर-शोर से उठाया और इसी का नतीजा रहा दस दिन बाद उनकी रिहाई के आदेश हुये। जेल के बाहर अरुणा जी के साथियों ने उनका गर्मजोशी से स्वागत किया। यह उनकी पहली जेल यात्रा थी।

सन् 1931 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान अरुणा आसफ अली को पुनः गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर 200 रुपये का जुर्माना लगाया गया लेकिन उन्होंने जुर्माना भरने से इनकार कर दिया। इन दिनों दिल्ली जेल में जहाँ उन्हें रखा गया था, वहाँ राजनीतिक बंदियों के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया जाता था। सरकार के इस बर्ताव के विरुद्ध घोर विरोध व्यक्त करते हुये अरुणा जी भूख हड़ताल पर बैठ गई। उनकी तबीयत बिगड़ने लगी लेकिन जब तक जेल प्रशासन उनकी माँग मानने को राजी नहीं हुआ तब तक उन्होंने भूख हड़ताल जारी राखी। जेल प्रशासन ने उनकी माँगे मान ली परंतु दंड स्वरूप उन्हें अंबाला जेल में स्थानांतरित कर दिया जहाँ वह अकेली महिला कैदी थी। उन्हें अकेला रखे जाने का विरोध हुआ तो ब्रिटिश सरकार ने एक अन्य महिला कैदी चंदो बीबी को वहाँ भेजा, अरुणा जी ने प्रतिक्रिया देते हुये कहा 'ब्रिटिश सरकार ने मुझे नायिका बना दिया।'[1]

जब छः माह बाद अरुणा जी को रिहा किया गया तो वे दिल्ली आ गई, इसके बाद अगले दस वर्षों तक अरुणा जी सक्रिय राजनीति से अलग होकर सामाजिक कर्तव्य के पथ की ओर अग्रसर हुई। इसकी शुरुआत 1929 ई. से ही हो गई थी जब उन्होंने दिल्ली वूमेन लीग( महिला संघ) के लिए कार्य करना आरंभ कर दिया था। अरुणा जी को महिला संघ से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका रामेश्वरी नेहरू ने निभाई। रामेश्वरी नेहरू अरुणा जी को जनसेवा व महिला आंदोलन की ओर खींच लाई। महिला संघ की स्थापना 1928 ई. में रामेश्वरी नेहरू ने दिल्ली के सरस्वती भवन दरियागंज में की। यह महिला संघ महिलाओं की शिक्षा, समानता व अधिकारों के संरक्षण के लिए कार्य करता था। अरुणा आसफने संघ में पूरी निष्ठा से कार्य किया और जल्द ही दिल्ली महिला संघ की सचिव चुनी गईं। इससे महिलाओं की अनेक समस्याओं को गहराई से जानने व समझने का मौका मिला। उनको लगा इस स्थिति में महिलाओं को संगठित करना नितांत आवश्यक है। उनका कहना था कि 'हम समानता की माँग करते हैं, हम इसके योग्य हैं, और हम इसे प्राप्त करने के लिए संघर्ष करेंगे।'[2]

तत्कालीन भारतीय राजनीति में एक भ्रम की स्थिति गांधीवाद व समाजवाद की विचारधारा को लेकर थी। यह तय कर पाना कठिन था कि किसका अनुसरण किया जाए। अरुणा जी ने समय निकालकर इस विषय पर अध्ययन किया और स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु प्रयासों को खोजने लगती हैं तो वे गांधीवाद और समाजवाद दोनों से प्रभावित दिखती हैं। दरअसल अरुणा जी को यह चुनने में असमंजस रहा कि लक्ष्य प्राप्ति हेतु गांधीजी के सत्याग्रह आदि का अनुसरण करें अथवा नेहरूजी के पूर्ण स्वराज्य हेतु संरचनात्मक कार्यक्रमों की अनुपालना करे। 1936 ई. में नेहरू जी की आत्मकथा को पढ़ने के बाद अरुणा जी इनसे प्रभावित हुई और उनका झुकाव समाजवाद की ओर हुआ।

1940 ई. में जब व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ा गया और पहले सत्याग्रही विनोबा भावे बने उसी समय अरुणा आसफअली भी आंदोलन में पुनः कूद पड़ी। आंदोलन के दौरान अरुणा जी को दिल्ली में गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन इस आंदोलन को गांधीजी ने विश्वयुद्ध के चलते सीमित समय उपरांत समाप्त कर दिया। गांधीजी युद्ध की विभीषिका में उलझी ब्रिटिश सरकार को और परेशान नहीं करना चाहते थे। गांधी जी के इस निर्णय से कांग्रेस में बहुत से लोग सहमत नहीं थे जिनमें अरुणा आसफ अली भी शामिल थी। अरुणा जी की गांधीजी से पहली गहरी बातचीत बारदोली( 1940 ) के समय हुई, अरुणा जी ने जब गांधी जी से पूछा कि आप ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आंदोलन करने से हिचकिचा क्यों रहें हैं? क्या इसलिए कि वे युद्ध में व्यस्त है? गांधी जी ने कहा 'वे विरोधी की उस परिस्थिति का लाभ नहीं उठाना चाहते जब वह स्वयं ही अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहे हैं।'[3]

7 अगस्त 1942 को बम्बई में कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए आसफ अली एवं अरुणा आसफ दोनों बम्बई आये। कांग्रेस ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जन-आंदोलन( भारत छोड़ो आंदोलन ) प्रारम्भ करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। गांधीजी ने 8 अगस्त 1942 की रात्री में कहा 'मैं तुरंत स्वतंत्रता चाहता हूँ यदि संभव हो तो पौ फटने से पूर्व ही, एक छोटा सा मंत्र मैं आपको देता हूँ 'करो या मरो'। हम भारत को स्वतंत्र करेंगे या मर मिटेंगे हम गुलामी को स्थायी बनाया जाता देखने के लिए नहीं जिंदा रहेंगे।'[4]

ब्रिटिश सरकार पहले से ही कांग्रेस की प्रत्येक गतिविधि पर पैनी नजर रखे हुये थी 'सरकार के पास पुराने अनुभव ये थे कि कांग्रेस को मौका न दो, नेताओं को जेल में डालकर आंदोलन को नेतृत्व विहीन कर दो। पुराने तजुर्बे को वह 1942 में भी दोहराना चाहती थी उसने पहले से ही तीन-तीन सूचियाँ तैयार कर रखी थी, किन-किन लोगों को पहले गिरफ्तार किया जाएगा किनको उनके बाद तथा किनको अंत में।'[5]

9 अगस्त 1942 को सुबह ही पुलिस हरकत में आ गई और गांधीजी, नेहरूजी, मौलाना आजाद, सरदार पटेल, आसफअली सहित 148 शीर्ष कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। अरुणा जी अपने पति से मिलने स्टेशन पहुंची तो देखा कि ट्रेन में खिड़की के पास मौलाना आजाद बैठे थे जिन्हें कांग्रेस अध्यक्ष होने के नाते ग्वालिया टैंक मैदान में 8 बजे राष्ट्रीय ध्वज फहराना था। अरुणा जी ने गिरफ्तार होने के बजाय मैदान में जाने की ठान ली। मैदान में होने वाली सभाओं को सरकार ने धारा 144 के तहत गैर कानूनी घोषित कर दिया। अरुणा जी के वहाँ पहुँचने के बाद की घटना स्वयं बताती है-'मैं तत्काल ही मंच पर चढ़ गयी और लोगों को नेताओं की गिरफ्तारी की सूचना दी और तिरंगे को फहराने के लिए बाँधी मोटी रस्सी को खींचने को कहा, पुलिस ने लोगों पर आँसू गैस छोड़ दी, लोग आँखों में आँसू लिए इधर-उधर भाग रहे थे इस अनुभव को देखकर मैंने गिरफ्तार न होने का निर्णय लिया।'[6] अरुणा जी ने अपनी जान पर खेलकर तिरंगा फहरा दिया।

अरुणा जी का विचार था कि सभी का जेल जाना कोई बुद्धिमानी नहीं है कुछ लोगों को बाहर रहकर आंदोलन का संचालन करना चाहिए। धीरे-धीरे पूरे देश में आन्दोलन फैल गया, 'करो या मरो' का अर्थ जिसे जो समझ में आया उसने उसे स्वीकार कर संघर्ष शुरू कर दिया। इधर बम्बई में कुछ दिन बिताने के बाद अरुणा जी दिल्ली आ गई वे जानती थी कि उनकी गिरफ्तारी किसी भी समय हो सकती है, इसलिए उन्होंने गिरफ्तारी से बचने के लिए भूमिगत होकर आंदोलन चलाने का निर्णय लिया। अरुणा जी ने जेल से बाहर बचे कांग्रेसी नेताओं के साथ आंदोलन को मजबूत बनाने का प्रयास किया, उन्होंने एक संदेश देकर दिल्ली के युवा छात्रों को उत्साहित किया। आंदोलन में प्राण डालकर वे घर से दूर देश भर में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ढाई वर्षों तक घूमती रहीं और अपने साथियों के साथ आंदोलन चलाती रहीं। इस आंदोलन ने सरकार के प्रशासनिक तंत्र को पूर्ण रूप से ध्वस्त कर पंगु बना दिया था ग्रामीण जनता को निर्देश दिये गए थे कि वे गांवों एवं शहरों के मध्य के समस्त संचार माध्यमों को काट दें तथा जनसमिति बनाकर भविष्य की किसी भी परिस्थिति से मुकाबले की व्यवस्था करें।

अरुणा आसफअली जब आंदोलन की जड़ें मजबूत कर रहीं थी तब 1944 ई. में पुलिस को करोलबाग में 'इंकलाब' व 'हमारा संग्राम' पत्रों की छायाप्रति के साथ अरुणा जी के लिखे कुछ पत्र प्राप्त हुये। इस विषय को लेकर उन पर केस दर्ज किया गया और उनका करोलबाग स्थित मकान 25000 रूपये में नीलाम कर दिया गया। जब ब्रिटिश सरकार अरुणा जी को ढूँढने में नाकामयाब रही तब इन्हें ढूँढने वाले को 5000 रुपये इनाम देने की घोषणा कर दी। पुलिस उन्हें हर स्थान पर खोज रही थी। एक पुलिस अधिकारी ने अपने उच्च अधिकारी को कहा-'यदि हम नौ लोग उन्हें खोज रहें हैं तो अकेले दिल्ली में नौ लाख लोग उन्हें छिपाने व शरण देने के लिए तैयार हैं, ये संतुलित व समान स्थिति नहीं है हमारे लिए। यदि हम उन्हें नहीं खोज पाये तो कृपया हमें दोष नहीं दीजिएगा।'[7]

जब स्वास्थ्य के आधार पर गांधी जी को रिहा किया गया, उन्होंने पत्र लिखकर अरुणा जी के साहस की प्रशंसा की और आत्मसमर्पण करने की बात लिखी। पत्र के उत्तर में अरुणा जी ने लिखा की वह आत्मसमर्पण के लिए तैयार नहीं है। 1945 ई. में सरकार ने राजनीतिक कैदियों को रिहा कर दिया। रिहाई के बाद जवाहरलाल नेहरू ने अरुणा आसफकी प्रशंसा करते हुये बहादुर महिला कहा और कहा कि उन्होंने जो भी किया है वह बेकार नहीं जाएगा वह फलीभूत होगा।

कैबिनेट मिशन को भारत भेजने की घोषणा से लगभग एक महीने पूर्व अरुणा आसफअली के गिरफ्तारी वारंट को रद्द कर दिया गया और इसी घोषणा के बाद भूमिगत अरुणा जी सामने आयीं। एक महान महिला का महान संकल्प था कि गिरफ्तार नहीं होंगी और यह संकल्प दृढ़ता से अंत तक कायम रहा। अरुणा जी का कलकत्ता में जोरदार स्वागत किया गया और जब वे वापस दिल्ली आ रही थी कलकत्ता के स्टेशन पर अपार भीड़ जमा हुई थी। अरुणा आसफसे मिलने को आतुर पति आसफअली दिल्ली से एक स्टेशन पहले गाजियाबाद पहुँच गए। लगभग ढाई वर्ष बाद दोनों की मुलाकात हुई।

अरुणा आसफअली अब एक महान महिला नेता बन चुकी थी। दिल्ली के आस-पास इन्होंने अनेक सभाएं की एवं विदेशी सामान का बहिष्कार करने व महिलाओं को आजादी के लिए जुटने का आह्वान किया, कहा कि हमारा लक्ष्य बहुत महान है, हम यह नहीं जानते कि स्वतंत्रता के लिए कितना त्याग व बलिदान और देना होगा। अरुणा जी अपने विचारों पर दृढ़ रहने वाली महिला थी और अपने विचारों से भिन्न विचार के लिए विरोध व्यक्त करने में भी जरा भी नहीं हिचकती थी। अगस्त 1946 मे कांग्रेस ने अंतरिम सरकार की योजना को स्वीकारा तथा मंत्रिमंडल की घोषणा की तब अरुणा जी ने असहमति व्यक्त की। मंत्रिमंडल में आसफअली का नाम भी शामिल था, जिस पर अरुणा जी ने अप्रसन्नता व्यक्त की। जब आसफअली मंत्री के रूप में कार्य ग्रहण कर रहे थे तब अरुणा जी मद्रास चली गई, 21 दिनों तक वहाँ की यात्रा

की। अंतरिम सरकार के गठन व आसफ अली के मंत्री बनने से दोनों में वैचारिक दूरी बन गई थी, इसलिए जब दिसम्बर में आसफआली को अमेरिका में भारतीय राजदूत बनाया गया तो अरुणा जी उनके साथ न जाकर भारत की आजादी तक भारत में ही बने रहने का संकल्प व्यक्त किया। गांधी जी के आग्रह पर अरुणा जी अपने पति के साथ कराची तक विमान में गयी, वहाँ उन्होंने स्पष्ट कहा इस महत्वपूर्ण एवं कठिन समय में भारत माता की सेवा करना चाहती हूँ छोड़कर जाना नहीं चाहती।

भारत में सांप्रदायिक सौहार्द बिगड़ता जा रहा था। मुस्लिम लीग व कांग्रेस में मतभेद इतना था कि दंगो के समय मार्च 1947 को लार्ड वैवेल की जगह लार्ड माउन्टबेटेन को नया वायसराय बनाया गया, इससे राष्ट्र विभाजन अनिवार्य सा हो गया। अरुणा जी इस स्थिति से दुखी थी, उन्होंने अशोक मेहता के साथ गांधी जी से भेंट की एवं राष्ट्र विभाजन का विरोध किया। अरुणा आसफअली व उनके साथियों का विभाजन रोकने का प्रयास सराहनीय था, परंतु तत्कालीन परिस्थितियों, मुस्लिम लीग की जिद्द, तथा कांग्रेस के एक वर्ग द्वारा विभाजन को अटल मान लेने के कारण विभाजन रोक न सके। 3 जून 1947 को माउन्टबेटेन ने विभाजन योजना प्रस्तुत की। 10 जून को मुस्लिम लीग व 14 जून को कांग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया। अब्दुल गफ्फार खाँ ने अरुणा आसफ से बड़े दर्द से कहा यह हमारे साथ विश्वासघात जैसा है। दर्द के इन अंशों के साथ 14-15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र भारत व पाकिस्तान अस्तित्व में आए। माना की देश को विभाजन की कीमत चुकानी पड़ी परंतु स्वतंत्रता प्राप्त होना भी ऐतिहासिक था।

अरुणा जी आसफ अली के पास वाशिंगटन चली गई। लंदन में आसफअली अरुणा जी को लेने आए और दोनों वाशिंगटन के लिए रवाना हो गए। अरुणा जी को एक लक्ष्य 'आजादी' प्राप्त हो चुका था परंतु यह अंतिम छोर नहीं था। अरुणा आसफअली जीवन भर देश सेवा में लगी रहीं।

**संदर्भ सूची:-**


1. राघवन, जी.एन.एस., अरुणा आसफअली एक संवेदनशील क्रांतिकारी, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2007, पृ. 37
2. पालीवाल, ओ.पी., रामेश्वरी नेहरू-एक परिचय, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 1986, पृ. 23
3. राघवन, जी.एन.एस., अरुणा आसफअली एक संवेदनशील क्रांतिकारी, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2007, पृ. 99
4. प्रसाद, कामेश्वर, भारत का इतिहास(1757-1950), भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना, 2021, पृ. 346
5. बेनीपुरी, रामवृक्ष, जय प्रकाश नारायण-एक जीवनी, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 173
6. राघवन, जी.एन.एस., अरुणा आसफअली एक संवेदनशील क्रांतिकारी, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2007, पृ. 43
7. राघवन, जी.एन.एस., अरुणा आसफअली एक संवेदनशील क्रांतिकारी, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2007, पृ. 43

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# श्रीलाल शुक्ल की कहानियों में सामाजिक दर्शन : एक आलोचनात्मक विवेचन

**रमेश वसुनिया**
**डॉ. सी. एल. शर्मा**

1. शोधार्थी, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
2. शोध निर्देशक, प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम, मप्र.

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता, श्रीलाल शुक्ल हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य रचनाकारों में से एक है, उनकी कहानियों में भारतीय समाज के यथार्थ का सजीव चित्रण मिलता है। वे भारत में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों के यथार्थवादी, व्यंग्यात्मक और आलोचनात्मक चित्रण के लिए जाने जाते हैं। उनकी कहानियों में सामाजिक वर्गों के चित्रण, सामाजिक मानदंडों की आलोचना और राजनीतिक और आर्थिक प्रणालियों के प्रतिनिधित्व का पता लगता है। मूलतः श्रीलाल शुक्ल भारतीय समाज के यथार्थवादी चित्रण के लिए जाने जाते हैं। उनकी कहानियाँ समाज के विभिन्न स्तर के लोगों के सामने आने वाले विभिन्न सामाजिक मुद्दों और चुनौतियों पर प्रकाश डालती हैं। श्रीलाल शुक्ल आधुनिक कहानी को पूर्ववर्ती कहानी से सर्वथा भिन्न मानते हैं। उनके अनुसार- प्राचीन कथा शिक्षाप्रद, धार्मिक, मनोरंजन व कौतूहल दर्शाती थी, पर सीमित मात्रा में इसके विपरीत आज की कहानी पात्रों के मनोविश्लेषणात्मक चित्रण द्वारा ही सार्थकता पाती है इसलिए जनसाधारण की समस्याएं, आकांक्षाएं, उलझनें व पारिवारिक गुत्थियों की विस्तृत झांकी संयुक्त परिवार विघटन, अलगाव, घूसखोरी, अंधविश्वास, ग्रामीण शोषण, आर्थिक वैषम्य, राष्ट्रीय जागरण, धर्म पर टिकी राजनीति व महाजनी सभ्यता की अमानवीयता इन सभी विषयों को आत्मीयता से समेटे हुए हैं तथा पात्रों के रूप पाठकों से भावनात्मक नाता जोड़ते हैं।

शुक्ल की कहानियों में विभिन्न सामाजिक वर्गों का चित्रण भारतीय समाज में मौजूद सामाजिक विभाजन की गहरी जानकारी प्रदान करता है। वह अपनी कहानियों में जाति, वर्ग और लिंग पदानुक्रम की जांच करते हैं। अपने लेखन में, वह चित्रित करते हैं कि कैसे ये पदानुक्रम समाज में कायम हैं? उदाहरण के लिए, अपने उपन्यास 'राग दरबारी' में उन्होंने जाति व्यवस्था का चित्रण किया है और यह कैसे ग्रामीण भारत में लोगों के जीवन को प्रभावित करती है? वह दिखाते है कि कैसे ऊंची जाति के लोग निचली जाति के लोगों का शोषण और उत्पीड़न करते हैं। इसी तरह, अपनी कहानी 'मकान' में उन्होंने वर्ग विभाजन को दर्शाया है और यह कैसे अमीर और गरीब के बीच एक व्यापक अंतर पैदा करता है। शुक्ल की कहानियाँ यह भी दिखाती हैं कि पात्र किस प्रकार इन वर्गों को पार करते हैं और चुनौती देते हैं। उदाहरण के लिए, अपने उपन्यास 'राग दरबारी' में नायक रंगनाथ जाति व्यवस्था को चुनौती देता है और बदलाव लाने की कौशिस करता है। शुक्ल की कहानियों में सामाजिक मानदंडों की आलोचना भारतीय समाज में प्रचलित सामाजिक मानदंडों की भी आलोचना करती है। वह विवाह, परिवार और धर्म से जुड़े मानदंडों की पड़ताल करता है। अपने कार्यों में, वह दिखाते हैं कि कैसे पात्र इन मानदंडों के अनुरूप उनका विरोध करते हैं। शुक्ल की कहानियाँ सामाजिक मानदंडों के अनुरूप या प्रतिरोध के परिणामों को भी दर्शाती हैं। उदाहरण के लिए, उनके उपन्यास 'राग दरबारी' में पात्र वैद्यजी सामाजिक मानदंडों के अनुरूप हैं और भ्रष्ट हो जाते हैं, जबकि रंगनाथ इन मानदंडों का विरोध करते हैं और बदलाव लाने की कौशिस करते हैं। शुक्ल की कहानियों में राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक प्रणालियों का प्रतिनिधित्व भारत में राजनीतिक और आर्थिक प्रणालियों की खामियों और चुनौतियों पर एक टिप्पणी भी प्रस्तुत करता है। वह अपनी कहानियों में भ्रष्टाचार, नौकरशाही और सत्ता की गतिशीलता की जांच करते हैं। अपने कार्यों में, वह दिखाते हैं कि ये प्रणालियाँ पात्रों और उनके जीवन को कैसे प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, अपने उपन्यास 'राग दरबारी' में उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार और ग्रामीण भारत में लोगों के जीवन को कैसे प्रभावित करता है, इसका चित्रण किया है। इसी तरह,अपनी कहानी 'मकान' में उन्होंने दिखाया है कि कैसे आर्थिक व्यवस्था अमीर और गरीब के बीच एक बड़ी खाई पैदा करती है। शुक्ल की कहानियाँ भारतीय समाज में शक्ति की गतिशीलता संबंधी आलोचना भी प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए, कहानी 'नौकर' में उन्होंने नियोक्ता और कर्मचारी के बीच शक्ति की गतिशीलता और यह कैसे शोषण की ओर ले जाती है, का चित्रण किया है।

शुक्ल की कहानियाँ बिगड़ते सामाजिक ताने-बाने को दर्शाती हैं। सबसे पहले, जाति व्यवस्था को एक विभाजनकारी शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। उनकी कहानियों में पात्रों के साथ उनकी जाति के आधार पर भेदभाव किया जाता है, और जाति पदानुक्रम कठोर और अक्षम्य है। दूसरे, समाज के सभी स्तरों पर भ्रष्टाचार व्याप्त है। सत्ता के पदों पर बैठे लोग व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने अधिकार का दुरुपयोग करते हैं और रिश्वतखोरी आम बात है। अंततः अन्याय और असमानता व्यापक है। गरीबों और हाशिए पर रहने वाले लोगों का शोषण किया जाता है, और कानूनी प्रणाली अक्सर अमीर और शक्तिशाली लोगों के पक्ष में पक्षपाती होती है। शुक्ल जी का प्रसिद्ध कहानी संग्रह 'सुरक्षा एवं अन्य कहानियाँ' एक महत्वपूर्ण संग्रह है। उनकी सामाजिक मुद्दों से जुड़ी कहानियाँ हमें भावनात्मक रूप से चीज़ों का एहसास कराती हैं, लेकिन वे हमें समाज की बुराइयों के बारे में सोचने पर भी मजबूर भी करती हैं। 'उमराव नगर में कुछ दिन' इनके एक संग्रह के केंद्रीय आख्यान के रूप में कार्य करती हैं। उमराव नगर एक ऐसा गांव है जिसे नियोजित विकास के चमत्कार का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुना गया है, लेकिन स्वतंत्रता के बाद के अवसरवाद और भ्रष्टाचार ने इसके सार्वजनिक जीवन से समझौता किया है।

'कुंती देवी का झोला' में पुलिस और डकैतों का आतंकवाद जिसका अंतिम शिकार बेखबर जनता होना चाहिए, एक विशिष्ट तरीके से दर्शाया गया है। 'मम्मीजी का गधा' में अफसरशाही के अहंकार को उभारा गया है और संयोगवश यह खबर ली जाती है कि कैसे नेता बेकार की परिस्थितियों से लाभ उठाते हैं। निश्चय ही यह संग्रह श्रीलाल शुक्ल की प्रसिद्ध व्यंग्य प्रतिभा को एक नई ऊंचाई प्रदान करता है।

शुक्ल की कहानियाँ मानवीय भावना के लचीलेपन को भी दर्शाती हैं। उनकी कहानियों में घुला मीठे व्यंग्य का चस्का पाठक और श्रोताओं के अंतःकरण को गुदगुदाकर उनके होठों पर मधुर मुस्कान भी बिखेरता हैं। उनकी कहानियों के पात्र विपरीत परिस्थितियों में ताकत और दृढ़ संकल्प का प्रदर्शन करते हैं। वे समाज द्वारा उनके रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर करने में सक्षम होते हैं और अपने लिए एक बेहतर जीवन बनाते हैं। दयालुता और करुणा के ऐसे उदाहरण हैं, जहां पात्र अपने मतभेदों के बावजूद एक-दूसरे की मदद करते हैं। कुछ पात्र अपनी परिस्थितियों से ऊपर उठने और बाधाओं के बावजूद सफलता हासिल करने में सक्षम होते हैं। इसके अलावा, इनकी कहानियाँ पारंपरिक मूल्यों के टूटने को उजागर करती हैं। पारिवारिक संरचनाएँ विघटित हो रही हैं, पात्र रिश्तों को बनाए रखने और अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। बड़ों और प्राधिकारियों के प्रति सम्मान कम हो रहा है, पात्र सामाजिक मानदंडों के खिलाफ विद्रोह कर रहे हैं। नैतिक मूल्यों से समझौता किया जा रहा है, पात्र ऐसे विकल्प चुन रहे हैं जो उनके विवेक के विरुद्ध जाते हैं। शुक्ल की कहानियाँ भारतीय समाज की जटिलताओं को अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं। वह जाति की गतिशीलता की बारीकियों को चित्रित करते हुए दिखाते हैं कि कैसे व्यक्ति अपनी जाति की पहचान से अलग-अलग तरीकों से प्रभावित होते हैं। उनकी कहानियाँ ग्रामीण समुदायों के सामने आने वाली चुनौतियों को संबोधित करती हैं, किसानों और मजदूरों के संघर्षों को उजागर करती हैं। वह परंपरा और आधुनिकता के अंतर्संबंध पर भी प्रकाश डालते हैं, जो समाज में अपना स्थान खोजने की कौशिस कर रहे व्यक्तियों के लिए चुनौतियों का एक अनूठा समूह तैयार करता है। शुक्ल कहते हैं कि सरकार सामाजिक मुद्दों को संबोधित करने में अप्रभावी है, पात्र अक्सर अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए अवैध तरीकों का सहारा लेते हैं। हिंसा और अपराध बढ़ रहे हैं, पात्रों को हर मोड़ पर खतरे का सामना करना पड़ रहा है। लोगों में निराशा की भावना है, पात्र अपने जीवन में अर्थ और उद्देश्य खोजने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। उनकी कहानियाँ सामाजिक मुद्दों के बारे में बातचीत को बढ़ावा देती हैं, जिससे व्यक्तियों को समाज के सामने आने वाली समस्याओं के बारे में गंभीर रूप से सोचने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। वे व्यक्तियों को अपने स्वयं के मूल्यों और विश्वासों पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित भी करते हैं, और उन्हें सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए कार्रवाई करने की दिशा दिखाते हैं। शुक्ल की कहानियाँ सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्प्रेरक के रूप में काम करती हैं, जो व्यक्तियों को बेहतर समाज बनाने के लिए मिलकर काम करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। अतः श्रीलाल शुक्ल की कहानियाँ भारतीय समाज का सूक्ष्म एवं यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करती हैं। जहां वे भारतीय समाज के सामने आने वाली विभिन्न चुनौतियों और मुद्दों पर प्रकाश डालते हैं, वहीं वे मानवीय भावना के लचीलेपन और सकारात्मक बदलाव की क्षमता को भी दर्शाते हैं। मिथकीय तकनीकों और क्षेत्रीय मुहावरों का प्रयोग करते हुए श्रीलाल शुक्ल ने अपनी अद्भुत एवं प्रभावी भाषा शैली का निर्माण किया। उन्होंने समाज की जड़ों तथा उसकी गहराइयों में जाकर पूरी गम्भीरता और निष्ठा से समाज की कुरूपता की पड़ताल की, उसकी नब्ज पर हाथ रखा। इसी वजह से उनके साहित्य का ग्रामीण, कृषि प्रधान भारत एक लोक शिष्टता के साथ चित्रित किया गया। लेकिन वास्तविकता के इस विचार में कई परतें हैं, जिनमें आध्यात्मिक, आंतरिक, भौतिक आदि शामिल हैं। उदाहरण के लिए कहानी 'छुट्टियाँ' में लेखक ने इसे लिखने के क्रम में व्यवस्था पर सवाल उठाया। विश्वविद्यालय में छात्रों की अव्यवस्था का कारण अव्यवस्थित एवं अनैतिक व्यवस्था एवं व्यवहार है। लेकिन बुराई की जड़ में कोई नहीं झांकता। वहीं तुलनात्मक रूप से 'एक चोर की कहानी' पाठकों को झकझोर कर रख देती है और साथ ही उन्हें प्रतिबिंबित भी करती है। सच कहा जाए तो यह एक चोर की नहीं बल्कि भूख और बदहाली की कहानी है। 'एक लुढ़कता पत्थर और 'पहचान' दो छोटी कहानियाँ हैं जो जीवन और मध्यम वर्ग की दुविधा को दर्शाती हैं। पता नहीं कब जीवन के संघर्ष में किसी व्यक्ति का नैतिकता और मानवता का भंडार धीरे-धीरे सूखने लगता है।

शुक्ल का साहित्य सामाजिक दर्शन और आलोचना-सा प्रतीत होता है। सामाजिक आलोचना एक साहित्यिक कार्य का विश्लेषण और विवेचन करने की प्रथा है, जिसमें यह जांचा जाता है कि किस सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक संदर्भ में यह लिखा या प्राप्त हुआ था, कि कला और समाज के बीच संबंधों का अन्वेषण किया जाता है। यह ऐतिहासिक आलोचना नहीं है, इसका उद्देश्य केवल यह निर्धारित करना है कि क्या काम वर्तमान स्थिति को चुनौती देता है या समर्थन करता है। सामाजिक आलोचना लोगों को समाजिक आलोचकों पर आधारित व्यावसायिक समाधानों की ओर भी संदर्भित कर सकती है, चाहे वह सम्मतिपूर्ण सुधार के लिए हो या प्रबल क्रांति के लिए। यह सामाजिक स्थितियों को सुधारने का प्रयास करता है। सभी महान कथाएँ प्रतिष्ठान पर आधारित होती हैं। एक लघुकथा में, लेखक एक पात्र को पूर्णतः नहीं चित्रित कर सकता। वह केवल एक दृष्टिकोण या किसी पात्र के कुछ विशिष्ट लक्षणों को प्रदर्शित कर समाज को उसका दिग्दर्शन कराता है, जो उसे प्रमुख स्थिति में डाल देता है। पुरुष और महिलाएँ ऐसी परिस्थितियों में रखे जाते हैं जो उनके पात्रों के प्रमुख लक्षणों को उजागर कर उन्हें विकसित करने के लिए पर्याप्त होते हैं। इस प्रकार निस्संदेह श्रीलाल शुक्ल की संपूर्ण कहानियों का साहित्य सृजन एक सामाजिक चेतना और सुधार का कार्य करता है।

**सन्दर्भ सूची**:-


1. श्रीलाल शुक्ल की दुनियाँ, सं अखिलेश, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000
2. श्रीलाल शुक्ल की संचियता, डॉ नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008
3. साहित्य समीक्षा के सिद्धांत, डॉ गोविन्द त्रिगुणायत, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली. 1951
4. साहित्य का समाजशास्त्रीय चिन्तन, निर्मला जैन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय 1906
5. सुरक्षा और अन्य कहानियाँ, श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008
6. मेरे साक्षात्कार: श्रीलाल शुक्ल, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम, 2015
7. आलोचना का परिप्रेक्ष्य सं. रोहिताश्व, विद्याप्रकाशन कानपुर, 2004.
8. श्रीलाल शुक्ल की संचियता, डॉ नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# 21वीं सदी के संस्मरण - साहित्य में चित्रित आधुनिक संस्कृति

**मलय नीरव**

शोधार्थी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

छुट्टी हुई। कई दिनों के बाद घर आया था। पापा से बातचीत हो रही थी। उन्होंने कहा कि सबके लिए अनंत पूजा में अनंत चढ़ाया गया था। मैंने और तुम्हारी मम्मी ने पहन लिया है, आज तुम भी नहाकर अनंत पहन लेना। मैं थोड़ा असमंजस में पड़ गया कि कैसे कहूं,वह पहनना मुझे असहज कर देता है। कभी-कभी उससे स्कीन एलर्जी भी हो जाती है। सम्भवतः वेमेरीमनः स्थिति को समझ गए थे। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा कि कोई बात नहीं आज भर के लिए पहन लो, फिर कल खोलकर सही से रख लेना। मैंने राहत की साँस ली। सोच रहा था कि कितने सरलहैं मेरे पापा, इतनी आजादी दे रहे हैं। इस घटना को आज याद कर मेरे मन में कुछ सवाल उठ रहे हैं। क्या मेरा संस्कार, मेरा धर्म इस घटना के बाद बस एक दिन का ही रह गया होगा और पापा का धर्म, संस्कार साल भर का? न ही न! यह हमारी संस्कृति की मौलिकता है, सरलता है, सहजता है, जो हमें, हम सबको अपने दायरे में रहते हुए खुद को बदलने की सहूलियत देता है। साथ ही समय के साथ आने वाले बदलाव को अपनाने के लिए प्रोत्साहित भी करता है।

क्या यह सिर्फ भारतीय संस्कृति की खासियत है या हर संस्कृति में यह खूबसूरती होती है कि वह एक ही लीक से बंधा न हो? यह भारतीय संस्कृति का नयापन है या फिर लचीलापन? सबको सहेज लेना, सबको समेट लेना। किसी को भी शरणार्थी नहीं रहने देना, सबको अपनी छांव में घेर लेना। सामासिक संस्कृति। एक घर, एक आँगन लेकिन दो संस्कृति। पद्मा सचदेव अपनी कृति'बारहदरी'में कुसुम अंसल की आँगन का चित्रण करती हैं। एक तरफ कुसुम के दादाजी हैं जो कुसुम को कहते हैं कि तुम कभी मांस नहीं खाना। बेटियां रचती हैं, नष्ट नहीं करतीं। वहीं आंगन के दूसरे छोड़ पर जमादारिन सफ़ाई कर रही थी। वह रात को पकने वाले मांस के लिए मसाला का इंतजाम कैसे हो इसके बारे में सोच रही थीं। क्या यह एक आँगन में दो संस्कृतियों का सह-अस्तित्व है? क्या यही हमारी सामासिक संस्कृति है? क्या तभी 'अशोक के फूल' निबंध में आचाय हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बात की बात है। सबकुछ में मिलावट है, सबकुछ अविशुद्ध है?

पहले संस्कृति चिट्ठियों के माध्यम से आती थी, आजकल ईमेल, व्हाट्सअप के माध्यम से आती है। आने का साधन बदला है तो स्वाभाविक है उसका स्वरूप भी बदलेगा। और यह जरूरी नहीं कि वह स्वरूप एक रेखीय हो। आज की संस्कृति में हर गंध समाहित है, चाहे वह गुलाब की खुशबू हो या फिर नाले की बदबू। जब हम 21 वीं सदी के संस्मरण साहित्य को पढ़ते हैं तो इसकी झलक हमें वहाँ देखने को मिलती है। सचदेव की बारहदरी, कमलेश्वर, गायत्री भाभी और पट्टी पूजन। पट्टी पूजन अर्थात्? बच्चे को अक्षर बोध करवाना। बालक कमलेश्वर को अक्षर ज्ञान करवाने पंडित और मौलवी दोनों आते थे। उन्हें क्रमशः '?' और 'अलिफ़' सिखाते थे। आज? और अलिफ़ एक साथ सीखने का सपना संस्कृति की परछाई में ही सिमट कर रह गया है। लेकिन सपना भी कहाँ! कई दशक बीत गए हैं मेरे जीवन के और कहाँ रह गए ये सपने! हम विस्मृति का शिकार हो गए हैं। अतीत का खोना और अतीत में खोना दोनों मिलकर ही एक संस्कृति को गढ़ते हैं। लेकिन हम क्या याद रखते हैं और क्या भूलते हैं, वह मायने रखता है।

तुलसी का पौधा कल भी था, आज भी है और कल भी रहेगा। यह सनातन है। नित्य है। यह हमारी स्मृति और संस्कृति दोनों में रची-बसी है। कथाकार कमलेश्वर सर्दी होने पर तुलसी का काढ़ा पीते थे,आज मैं भी। पद्मा सचदेव के बारहदरी में जब कमलेश्वर को तुलसी का काढ़ा पीते हुए देखा तो ऐसा लगा जैसे मैं खुद के वर्तमान को ही देख रहा हूँ. टाइम ट्रैवल करने लगा। लगा जैसे कमलेश्वर की तुलसी आज हम तक पहुंच गई है। मैं इसके माध्यम से अपने साहित्य के अतीत से जुड़ता महसूस कर रहा था। यह स्मृति का, साहित्य का संस्कृति हो जाना तो नहीं!

कुआं, रस्सी और उससे बंधी बाल्टी। कुआं के पानी में तैरने को तैयार बाल्टी। यह दृश्य कमलेश्वर के बचपन में है (बारहदरी, पद्मासचदेव ) और उनसे कई बरस बाद के मेरे बचपन में भी। कुछ दिन पहले कपिलेश्वर मंदिर जाना हुआ था। वहाँ भी कुआं था, बचपन की याद आ गई । बारहदरी में कुआं को पढ़ते हुए फिर से बचपन याद हो आया और कपिलेश्वर मंदिर भी। ऐसा लग रहा है कि मंदिर में कुआं से बाल्टी भर जल नहीं निकाल रहा था बल्कि एक संस्कृति जो बचपन के बाद कहीं खो गई थी, उस खोई संस्कृति को ही रस्सी के सहारे अपने पास बुला रहा था। अभी बाल्टी नहीं किताब है हाथ में पर ऐसा लग रहा है जैसे वो संस्कृति फिर से मेरे अन्दर जी उठी है। कुआं और किताब एक ही काम कर रहे हैं, मुझे मेरी स्मृति और संस्कृति से मिला रहे हैं।

कोई संस्कृति जीवित है तो उसमें स्मृति का योगदान भरपूर है, औरअगर कोई संस्कृति भविष्य में जीवित है तो अवश्य ही वह कल्पनाशील होग! कल्पनाशीलता का अभाव इंसान को मशीन बना देता है फिर संस्कृति कैसे इसके बिना जीवित रह सकती है।

हम नालंदा जाने वाले थे। इंतजार कर रहे थे बस की जो आने वाली थी। बस के आने से पहले उसका ख्वाब आ गया था कि मस्त सोफा वाली बस होगी, लेकिन सामने आया खंडहर से करीब-करीब मिलती-जुलती खटारा बस। कभी ओम थानवी (मुअन जोदड़ो, ओम थानवी)भी बस के इंतजार में थे, मुझसे हजारों किलोमीटर दूर, वर्षों पहले। सिर्फ काल और

स्थान ही नहीं, देश (हिन्दुस्तान और पाकिस्तान) भी भिन्न-भिन्नथा। हालांकि ये दोनों देश एक ही साझा संस्कृति की उपज है। बस का जैसा शानदार खाका उनके सामने खींचा गया था, उससे कहीं कई गुना बदतर बस उन्हें वहाँ मिली थी। गनीमत यह कि सीट थी, भले ही टूटी हालत में। हम दो भिन्न काल में थे लेकिन हमारे झटके एक जैसे थे, हमारी मन:स्थिति एक सी, अखिरकार कैसे? दोनों ही जो तलाश करने निकले थे अपनी संस्कृति की परंपरा को! 21वीं सदी में नालंदा विश्वविद्यालय के खंडहर देखता हुआ मैं,20वीं सदी में मुअनजोदड़ो को देखते ओमथानवी, कहाँ जुड़ रहे थे हम? दोनों ही खोज रहे थे अपनी संस्कृति को, जीवन के सार को। ओम थानवी का यह यात्रा-संस्मरण हमें खुद को फ़रि से देखने का मौका दे रहा है। हम कितने भी नए हो जाए हमारा वजूद अतीत से बंधा ही होता है। हम उसे भले ही नकार दें, वह हमें नहीं छोड़ता है। चाहे वह नालंदा हो या मुअनजोदड़ो!

लोग निकल गए लेकिन वक़्त वही ठहर गया, क्या सच में? आजादी के बाद का समय, लालटेन, डिबिया या अंधेरी रात का समय था। रात होते ही पशु-पक्षियों की तरह आबादी का बड़ा हिस्सा सो जाता था। सुबह सूर्योदय से पहले जग जाता था। दिनचर्या का प्रारंभ, दिन होने से पहले ही शुरू हो जाता था। कुछ बरस बाद आयास मय, बिजली का, लैंप का। बिजली-केरोसिन तेल रात होने के समय को बढ़ा दिया, दिन भी अब सूर्योदय के साथ हो रहा था। आज का समय दिन और रात के समान हो जाने का समय है। भले ही आज भी आय और लिंग के स्तर पर असमानता हो। सूर्योदय और सूर्यास्त अब हमारे हिसाब से होने लगा है। वक़्त ठहरा नहीं,एक हो गया है। इतना ज्यादा परिवर्तन होने के बाद क्या हम यह सोच-समझ सकते हैं कि आज भी हम अपनी संस्कृति और परंपराओं से विचलितनहीं हुए होंगे? हमारा साहित्य इस नवीन होते, जवान होते संस्कृति को क्या दर्ज नहीं कर रहा होगा? अवश्य ही दर्ज कर रहा है। जब हम 21 वीं सदी के संस्मरण-साहित्य से गुजरते हैं तो इस परिवर्तन को शब्दों की संवेदना के माध्यम से देख पाते हैं। महादेवी वर्मा का 'मेरा परिवार' का दायरा जन से विस्तृत हो सजीव प्राणी तक पहुंच जाता है। वही आज के संस्मरण में यह व्यापकता सीमित होकर जन तक लौट आया है। जन से होते हुए यह व्यक्ति विशेष होता जा रहा है। क्या साहित्य के 'आछे दिन पाछे जा रहे हैं'? या एक नया संसार बन रहा है जहां अधूरा ही पूरा होना है।

संस्कृति, सभ्यता। ये शब्द सुन हमेशा संशय होता है कि किसे कहेंगे संस्कृति, किसे कहेंगे सभ्यता? इससे ज्यादा कि किसे इन दोनों खाँचे में नहीं रख सकते हैं! सुनता हूं कि विश्वविद्यालय में साँस्कृतिक कार्यक्रम हो रहा है, वहाँ से निकल रहे छात्रों के गप-शप में सुनाई देता है कि वह कितने मधुर स्वर में गा रही थी। वाह! उसका नृत्य हमारी सांसों को तरंगित कर दिया था। सोचता हूँ और समझने की कोशिश करता हूँ कि अच्छा यह है संस्कृति! फिर एक सवाल खुद ही इसके साथ उभर आता है कि जब हम गाँव में थे, सुबह कोयल की कूक सुनाई देती थी, मीठा-स्वर, हम उसी स्वर को दोहराते थे, फ़रि कोयल कूकती थी। यह क्रम हमारे थकने तक चलता रहता था। तो क्या हम कोयल के मीठे स्वर को संस्कृति के परिभाषित दायरे में रख सकते हैंया बारिश में जंगल में नाचती मोर के नृत्य को साँस्कृतिक कार्यक्रम मान सकते हैं? ये सवाल साहित्य को पढ़ते समय कभी दबता तो कभी उभरता है। आज जबये स्वर और नृत्य गायब होते जा रहे तब हम किस तरह के संस्कृति के नए धरातल बना रहे हैं!

'आहट सुन रहा हूँ यादों की।' मानों यादें, यादें न होकर पदचाप हो। काशीनाथ सिंह जी की संस्मरणात्मक किताब है, जिसमें वह नामवर सिंह के हवाले से कहते हैं कि परम्परा निभाना बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है उस परम्परा में अपना कुछ जोड़ना। जोड़ना! आज जोड़ने से ज्यादा तोड़ने की ध्वनि सुनाई देती है। जोड़ना असंभव होता जा रहा है। क्यों? हम एकाकी होते जा रहे। एकाकी होकर हम भीड़ की तलाश में भागते हैं। भीड़ का कोई नियम नहीं होता है। वह सृजन से ज्यादा विनाश की ओर भागता है, क्योंकि विनाश का शोर उसके एकाकीपन को घोट जाता है। सृजन की शांति उसके लिए असहाय होता है। जब हम अनीता राकेश की किताब'अतिरिक्त सतरें' से गुजरते हैं तब वह हमें अपनी इस खामी का पड़ताल करने के लिए उकसाता है। 21 वीं सदी का प्रारंभ मोबाइल क्रांति के साथहुआथा। अब हम इन्टरनेट युग में प्रवेश कर चुके हैं। 21 वीं सदी को नेट-युग भी कहा जा सकता है। नेट-युग की संस्कृति क्या हो सकती है? अब जबकि समय 5-जी के रफ्तार से दौड़ रहा है, चलते-चलते खाने-पीने का समय आ गया है। मेट्रो में बैठे हैं, एक तरफ़ आंख न्यूज का पान कर रहा होता है तो दूसरी तरफ़ मुंह में सेब या सैंडविच जा रहा होता है। समय का अभाव नहीं भाव के युग में हमारी संस्कृति भी फास्टफूड सी होती जा रही है। रील, सेल्फी और इंस्टा पोस्ट के दौर में जो विज्ञापन के नज़र में नहीं, उसका भला कौन ज्ञापन ले। संस्कृति भी आज विज्ञापन की मोहताज हो रही है। मिथिला प्रदेश में शादी हो रही है, मैथिली बोली में विवाह के संगीत से सजी मिथिला की धरती पर हरियाणवी गाना ' बाबन गज का दमन ' बज रहा है। आज मिथिला के लिए हरियाणा दूर नहीं, लेकिन हरियाणा के लिए मिथिला आज भी शायद उतना ही दूर है। यही है विज्ञापन की संस्कृति, संस्कृति का ज्ञापन। केवल खाना ही फटाफट नहीं हुआ है, बल्कि साहित्य भी। जैसे आज हम महाकाव्य के जगह दो लाइन की शायरी पढ़ना पसंद करते है। उपन्यास कहानी तो कहानी लघु कहानी की ओर मुड़ रहा है। फास्टफूड खाते-खाते मोटी किताब पतली होती जा रही है। हम चाहते हैं कि कुछ ही पन्ने की किताब हो, ताकि किताब एक ही बैठकी में खत्म हो जाए। अनीता राकेश की किताब ' अतिरिक्त सतरें ' कम पृष्ठ की किताब है, लेकिन उसमें दर्ज जीवन, संवेदना उसे कहीं से भी अन्य मोटी किताब से कमतर नहीं ठहराती है। लेकिन कम पृष्ठ उसके और पाठक का ध्यान स्वाभाविक रूप से आकर्षित करता है।

पहले अखबार आया, हम खबर पढ़ते थे, उसके बाद रेडियो आया और हम खबर सुनने लगे फिर टीवी आया और हम खबर को देखने लगें, ब्रेकिंगन्यूज। अब आया है सोशल मीडिया, हम न खबर पढ़ते हैं, न सुनते हैं, न देखते हैं बल्कि खुद ही खबर बन जाना चाहते हैं। हम रियल से ज्यादा रील होना पसंद करते हैं। ऐसे समय में उस साहित्य-विधा का लिखा जाना बढ़ना स्वाभाविक है, जिसमें सृजन करने वाला खुद का ही पुनर्निर्माण कर रहा हो। तभी आज आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा वृतांत जैसे कथेतर गद्य विधा का बहुतायत में लिखा जाना आश्चर्यचकित नहीं करता है।

21 वीं सदी के संस्मरणों को पढ़कर हम 21 वीं सदी को कम और 20 वीं सदी को ज्यादा समझ पाते हैं। फिर उस समझ के आईने से हम आज को, 21 वीं सदी को देखते हैं, परखते हैं। लेकिन यह दृष्टि कभी-कभी हमें भ्रमित भी कर देती है।

एक ज़माना हुआ करता था जब 'इंटर का छात्र' हुआ करते थे, मैं भी उसी ज़माने का हूँ, अब 'छात्र इन्टरनेट का' होने लगे हैं। मैं छात्र तो वैसा नहीं बन पाया लेकिन अब भले ही शोधार्थी इन्टरनेट का बन गया हूँ। हाथ उठाता हूँ कि कुछ पढ़ूं, लेकिन कहाँ से, दिमाग फौरन कहता है इन्टरनेट

से। व्योमकेश दरवेश में रवींद्रनाथटैगोर के शांति निकेतन का जिक्र आता है, जिसमें वर्णन होता है कि कैसे विद्यार्थी चहारदीवारी रहित परिसर में पेड़ों के नीचे पढ़ा करते थे तो मेरी नज़र भी अपने विश्वविद्यालय परिसर के पेड़ पर अनजाने चली जाती है। पेड़ तो हैं लेकिन वैसे छात्र अब कहाँ? अगर आज ऐसा होगा तो क्या होगा.! पेड़ के नीचे पढ़ते छात्र की तस्वीरें अगले दिन ही मीडिया, सोशल मीडिया में छप जाएगी, हेडिंग होगा 'संसाधन विहीन विश्वविद्यालय', 'भ्रष्टाचार का पोल खोलती तस्वीर' आदि आदि। सदी बदली है, संस्कृति भी। आज ख़बरें छुपाई जाती हैं, अफवाहें फैलाई जाती है। साहित्य भी इसका शिकार हो रहा है। कभी साहित्य इस बदलाव को रेखांकित करता है तो कभी खुद भी उसी के साथ बह निकलता है।

संस्कृति शब्द गंगा जल की तरह है, जिससे जुड़ जाए वह पवित्र हो उठताहै। आधुनिकता के नाम पर आज कई तरह के खेल खेले जा रहे हैं, लेकिन सब जायज हो जाते हैं जब उन्हें आधुनिक संस्कृति से नवाजा जाता है। 'आहटें सुन रहा हूँ यादों की' में काशीनाथ सिंह 1950 के आस-पास के बनारस का जिक्र कर कहते हैं कि ये वे दिन थे जब बनारस सचमुच भारतीय संस्कृति ही नहीं, साहित्य की भी राजधानी थी। हाँ थी ! आगे चलकर वे आज के बनारस के लिए कहते हैं कि हां, राजधानी आज भी है यह नगर, लेकिन कला और संस्कृति की नहीं, धार्मिक अनुष्ठानों और कर्मकांडों की। इस पर कोई गर्व करना चाहे तो कर सकता है। काशी के बनारस का बदलता स्वरूप क्या पूरे भारत के बदलते स्वरूप का ही तो चित्रण नहीं ! अगर हाँ, तो क्या हम इस बदलाव का स्वागत करें या आत्म अवलोकन! बदलता भारत, विकसित होता भारत क्या सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ता भारत बन रहा है... भारत के लिए दोनों तरह के दृश्य दिखाए जाते हैं, समृद्ध और विपन्न, लेकिन हम किसे सच मानते हैं और किसे झूठ... इससे भी ज्यादा हम किस तरह के जीवन को जी पा रहे हैं , व्यक्तिगत स्तर पर! इसे समझने के लिए हमें किसी साहित्य और संस्कृति के भीतर झांकने की जरूरत नहीं है, बल्कि खुद को देखने की कोशिश करनी चाहिए, आत्म को, जहां हमें साहित्य भी दिख जाएगा और संस्कृति भी!

इंसान ख्वाब देखता है, काश वो ख्वाब ही संस्कृति हो जाया करते! आज संस्कृति की तलाश कहां पहुंची है, अगर कोई यह पूछता है तो मन-मंदिर कहता है; हम चिट्ठी का इंतजार करते रह गए,उनके घर टेलीफोन आ गया। मैं तलाश कर रहा हूँ संस्कृति की, कोई तलाश कर रहा है रोटी का। किसकी तलाश पवित्र है? कौन कह सकता है खुद को संस्कृति-पुरुष, मैं या वह! क्यारोटी की तलाश ही संस्कृति है और संस्कृति की तलाश ही रोटी! ये सवाल हैं, फिर जवाब भी होंगे ही?

आह नहीं, वाह संस्कृति हो। इसके लिए हम सभी को सम्वेदनशील होना होगा और संस्मरण हमें यही सिखाता है।

'आहटें सुन रहा हूँ यादों की' में एक चरित्र है वकील। वे काशीनाथ से कहते हैं, 'कासी पंडित! मैं नामवर से दो साल बड़ा हूँ। अब भी गाँव जाता हूँ, साल में कम से कम एक बार। हमारे साथ बचपन में पढ़ता था बनारसी, जाति का कोइरी! उससे मिलता हूँ और पूछता हूँ, 'बनारसी कोई कष्ट?' अबकी उससे पूछा तो कहा-'है! एक कष्ट है। वकील साहब, बेटियां थीं, सबकी शादी कर दी। बेटे हैं, काम-धंधे से लग गए। बीवी है, कोई रोग नहीं है उसे। मैं हूँ, अपनी आंखों देख रहे हैं कि ठीक हूं। बस, एक ही कष्ट है-आदमी नहीं मिलते अब।'

कितना सत्य है, कितना है यह यथार्थ! आधुनिक यथार्थ! आज अगर कुछ मिलता है तो वह होता है भीड़ नहीं तो तन्हाई। आदमी नहीं, समाज नहीं, संस्कृति नहीं, साहित्य..! अब इसके बाद भी क्या कुछ बचा रह जाता है 21 वीं सदी की संस्कृति पर कहने के लिए?... शेष परिशिष्ट है।

परिशिष्ट..

मैं तो अभी-अभी युवा हुआ हूँ। जीना सीख ही रहा हूँ। मैं क्यों मरघट का विलाप करूँ। मैं तो बहुत खुश हूँ आज की संस्कृति से। उत्तर-आधुनिकता और उत्तर-यथार्थ से। अपनी आज की जादुई संस्कृति से। लगता है अभी मेरा और मॉडर्न होना बाकी है, और जीना बाकी है। मैं जो जी रहा हूँ वही मेरी संस्कृति है, और मैं इसी में तल्लीन रहना चाहता हूँ। ऊपर जो लिखा गया उससे मेरा कोई भी ताल्लुकात नहीं। वह एक पाठक का विलाप है जो पढ़ रहा है, हर जगह नष्ट होती भारतीय संस्कृति को। इसलिए वह अपने उसी पढ़ने को यहाँ उतार दिया है। मैं उस पाठक से घोर असहमत हूँ। यह आज ही मैं हूँ, मेरी संस्कृति है, और आज बेहद खुशनुमा है। झूठा-सच, सच्चा-झूठ!

**संदर्भ सूची :-**


1. सिंह, काशीनाथ: आहटें सुन रहा हूं यादों की, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2024
2. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन: त्रिशंकु, पुनर्मुद्रण, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
3. सचदेव, पद्मा: बारहदरी, पुनर्मुद्रण, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
4. थानवी, ओम: मुअनजोदड़ो, द्वितीय संस्करण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
5. राकेश, अनीता: अतिरिक्त सतरें, प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
6. राकेश, अनीता: अन्तिम सतरें, प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
7. https://www.hindwi.org/essay/bharatiy-sanskriti-ki-den-hajariprasad-dwivedi-essay

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# Financial Independence in Woemn : Trends, Progress, and the Impact of COVID - 19

**Dr. Sandeep Kumar Gupta**

**Assistant Professor, Commerce, Manyawar Kanshiram Govt. Degree College, Gabhana, Aligarh**

**Abstract:-**This article explores the concept of financial independence among women, tracing historical progress and challenges. It also examines how the COVID-19 pandemic has disrupted the financial empowerment of women globally. The research draws on economic data, gender studies, and global reports to analyse trends in female workforce participation, the pay gap, and other indicators of financial autonomy. The study highlights both long-term improvements and the specific setbacks caused by the pandemic, including increased caregiving responsibilities, layoffs in female-dominated industries, and limited access to resources for small women-owned businesses. Recommendations for future policies to restore and strengthen women's financial independence post-pandemic are also discussed.

**Introduction:** Understanding Financial Independence Financial independence refers to the ability of individuals to meet their own economic needs without relying on external financial support. For women, this concept has been tied to broader societal changes such as access to education, labour market participation, ownership rights, and gender equality. Historically, women's financial independence has lagged men's due to cultural, legal, and systemic barriers, but significant progress has been made in recent decades. However, the economic disruptions caused by the COVID-19 pandemic have exposed and intensified vulnerabilities in women's financial autonomy.

**Historical Context of Women's Financial Independence:-**The journey toward financial independence for women has been marked by social, legal, and economic transformations across centuries. This progress has been intertwined with broader shifts in cultural attitudes and legal rights that have empowered women to gain control over their finances and economic status.

**1. Early Restrictions and Dependence:-**Historically, women's financial roles were limited by strict societal norms and legal structures. In many ancient and medieval societies, women were primarily confined to domestic roles and lacked the legal rights to own property, manage finances, or inherit wealth. For instance, under the common law in England and early America, a married woman's assets and income automatically became her husband's, leaving her financially dependent and without control over her wealth.

**2. Property Rights Reforms:-**The 19th century saw significant changes with the emergence of the women's rights movement. Landmark laws, such as the Married Women's Property Acts in the United Kingdom and the United States, granted married women the right to own and control property, signaling the start of financial autonomy. These reforms allowed women to inherit, earn, and manage assets independently, laying a foundation for their future financial independence.

**3. Suffrage Movement and Economic Participation:-**The women's suffrage movement, which gained momentum in the late 19th and early 20th centuries, linked political and financial empowerment. With voting rights, women could advocate for policies that promoted gender equality in employment, wages, and education. As countries around the world extended suffrage to women, this political agency facilitated broader economic participation, allowing women to seek employment and have a say in their financial futures.

**4. The World Wars and Labor Market Entry:-**World War I and World War II were pivotal in accelerating women's financial independence, as women entered the workforce in large numbers to fill roles vacated by men who were fighting abroad. This shift not only increased women's participation in diverse industries but also demonstrated their capability in roles traditionally occupied by men. Post-war, while some women returned to domestic roles, many remained in the workforce, setting the stage for future generations to pursue professional

careers.

**5. The Second-Wave Feminist Movement and Economic Rights:-**The 1960s and 1970s marked a transformative period with the rise of second-wave feminism. Advocates pushed for workplace equality, reproductive rights, and equal pay. Key legislation, such as the Equal Pay Act (1963) and Title VII of the Civil Rights Act (1964) in the U.S., outlawed discrimination based on gender, opening doors for women in higher-paying roles and leading to increased financial independence. Similar reforms took place in other countries, laying down a legal framework for gender equality in employment.

**6. Educational Attainment and Workforce Expansion:-** Throughout the late 20th century, educational opportunities for women expanded significantly, driven by a greater emphasis on gender equality in schools and higher education. Access to education empowered women with skills needed to compete in the workforce and pursue high-paying careers. This shift not only boosted women's earning potential but also redefined gender norms around work and financial independence.

**7. Rise of Women Entrepreneurs and Financial Independence:-**From the 1980s onward, women increasingly ventured into entrepreneurship, fueled by microfinance initiatives and greater access to business networks. Women-owned businesses began to contribute significantly to national economies, especially in developing nations where small-scale businesses offered a pathway out of poverty. Microloans, spearheaded by organizations like the Grameen Bank, provided financial support for women entrepreneurs, fostering economic growth and self-sufficiency.

**8. The Role of Technology and Financial Services:-** With the rise of technology in the 21st century, financial services became more accessible to women globally. Digital banking, mobile payment systems, and online learning platforms provided new tools for women to manage finances independently, pursue higher education, and even start their own businesses. Technology has become a powerful catalyst for financial autonomy, helping bridge gaps that have historically limited women's economic participation.

**Progress in Women's Financial Independence over the time:-**Over the past century, financial independence for women has seen remarkable growth, particularly in developed nations. Key milestones in this journey include:-

- Voting rights and property laws: The right to vote and own property laid the groundwork for women's financial autonomy. In many countries, legal reforms in the 20th century allowed women to control their own income and assets.
- Increased labour force participation: Between the 1960s and 2000s, women's participation in the workforce expanded significantly, driven by the feminist movement, better access to education, and greater employment opportunities.
- Educational Attainment: Education has been a powerful equalizer. According to the World Bank, women now make up more than half of the university graduates in many countries, which has a direct impact on their earning potential.
- Entrepreneurship: A growing number of women are starting businesses. Women-owned businesses are estimated to contribute trillions to global GDP, and access to microfinance has played a role in empowering women in developing economies.

Despite these advances, gender pay gaps and underrepresentation in leadership roles persist, signalling that true financial equality has yet to be achieved.

**Financial Independence and COVID-19: The Impact**

**1. Labor Market Disruption:-**The COVID-19 pandemic has disproportionately affected women in the labor market. According to a report from the International Labour Organization (ILO), women experienced greater job losses than men, particularly because the hardest-hit industries-hospitality, retail, and service sectors-are largely female-dominated. The pandemic exacerbated existing gender inequalities, especially for low-income and part-time workers, the majority of whom are women.

A McKinsey & Company report showed that women's jobs were 1.8 times more vulnerable to the crisis compared to men's. While women accounted for 39% of global employment, they represented 54% of the overall job losses during the pandemic. This dramatic decline in employment has reversed years of progress in narrowing the gender employment gap.

**2. Increased Caregiving Responsibilities:-**The pandemic resulted in the closure of schools and daycare centres, forcing many women to assume additional caregiving responsibilities. In most households, women bear the brunt of unpaid care work, leading to increased stress and, in many cases, the need to cut back on paid work. UN Women found that women were spending an additional 4.1 hours per day on childcare during the pandemic, which impacted their ability to maintain employment or seek financial independence.

**3. Women Entrepreneurs: Struggles and Resilience:-** Small businesses, particularly those owned by women, have faced considerable challenges during the pandemic.

Women entrepreneurs often operate in sectors vulnerable to economic downturns, such as hospitality, fashion, and retail, which experienced prolonged closures and reduced consumer demand. Furthermore, access to capital-a pre-existing challenge for women entrepreneurs-became even more restricted during the pandemic, as many small businesses loan programs were not designed to support women-led enterprises effectively.

However, some women-led businesses demonstrated resilience by pivoting to e-commerce and digital solutions. Those with access to digital tools were able to sustain their businesses by reaching broader markets online. Nevertheless, the digital gender gap, especially in low-income countries, remains a barrier for many women entrepreneurs to fully capitalize on these opportunities.

**4. Impact on Financial Health and Savings:-**Women's financial health was particularly affected by the pandemic, as they are more likely than men to work in insecure, low-wage jobs. According to OECD data, women generally have lower savings and are more reliant on public services, which were often disrupted during the pandemic. Many women had to deplete their savings to cover daily expenses during lockdowns, further eroding their financial security.

**Long-Term Implications and Recovery:-**As the world gradually recovers from the pandemic, restoring women's financial independence requires intentional policies and strategies. The post-pandemic recovery phase offers an opportunity to address structural issues such as the gender pay gap, unequal caregiving responsibilities, and access to capital for women entrepreneurs.

- Investing in Care Infrastructure: To ensure women can return to work, governments must invest in affordable childcare and eldercare. Public policies that promote shared caregiving responsibilities between men and women will also be crucial in reducing the burden on women.
- Inclusive Economic Policies: Stimulus packages should be designed with gender sensitivity to support women-dominated industries and businesses. This includes targeted relief for women entrepreneurs and programs to upskill women for the post-pandemic economy.
- Closing the Digital Gender Divide: Access to technology and digital skills is vital for women's financial independence. Expanding internet access and providing digital training programs can help women participate in the global digital economy.
- Strengthening Social Safety Nets: Enhancing social safety nets, such as unemployment benefits, paid leave, and health insurance, can cushion women from the economic shocks of future crises.

**Challenges Beyond COVID-19:-**Even as the world recovers from the pandemic, several persistent challenges continue to hinder women's financial independence. These issues, rooted in systemic inequalities and cultural norms, remain significant barriers for women seeking economic autonomy.

- 1. Workplace Discrimination and Gender Bias

Women still face discriminatory practices in hiring, promotion, and compensation. Biases related to gender, race, and age can affect their career advancement and earnings. A 2021 report from the World Economic Forum found that it could take over 130 years to close the global gender gap, highlighting that entrenched biases are deeply rooted in many labor markets.

- 2. The "Motherhood Penalty"

Women who become mothers often experience reduced earning potential compared to men or women without children, a phenomenon known as the "motherhood penalty." This penalty results from both time taken off work for caregiving and lingering stereotypes about mothers' commitment to their jobs. Studies have shown that mothers are often passed over for promotions and face reduced work hours, both of which contribute to lower lifetime earnings.

- 3. Gender Pay Gap and Occupational Segregation

The gender pay gap remains a critical challenge, with women earning significantly less than men in nearly every industry. This gap is exacerbated by occupational segregation, where women are often concentrated in lower-paying sectors such as education, healthcare, and retail. According to the International Labour Organization, addressing occupational segregation requires substantial policy intervention and a shift in societal perceptions regarding "gendered" professions.

- 4. Limited Representation in Leadership Positions

While the number of women in leadership roles has increased, women remain underrepresented in high-level corporate and government positions. The "glass ceiling" effect continues to limit women's access to top-tier roles, impacting their influence in policy-making and economic decision-making. Studies show that diverse leadership teams are linked to improved business outcomes, indicating that promoting gender diversity in leadership benefits both women and organizations.

- 5. Access to Financial Resources

Women, particularly those in developing countries, face challenges in accessing financial resources, such as credit and investment capital. This restricts their ability to start or grow businesses. Although microfinance initiatives have been helpful, they often lack the scale needed to support more extensive entrepreneurial endeavors. Financial institutions must work to address these barriers by designing products tailored to women's unique needs and by reducing the collateral requirements that women may find hard to meet.

- 6. Educational and Digital Divide

Although global educational attainment for women has improved, women in many regions still face restricted access to quality education and digital tools. The digital divide, which affects internet access and technological proficiency, limits women's participation in modern economies, particularly in rural and underserved areas. Providing equal access to education and digital resources is essential for women to achieve financial independence and thrive in a technology-driven world.

- 7. Lack of Social Safety Nets

Women, who are disproportionately employed in informal or part-time work, often lack access to benefits like health insurance, maternity leave, and retirement funds. Without these social safety nets, women are more vulnerable to financial instability during life transitions such as childbirth, illness, or retirement. Expanding these protections to cover non-traditional work arrangements is crucial for supporting women's long-term financial security.

- 8. Cultural and Social Norms

In many societies, cultural expectations around gender roles continue to limit women's financial independence. Societal norms that dictate caregiving responsibilities as "women's work" constrain their ability to participate fully in the workforce. Addressing these norms through awareness campaigns and encouraging men to share caregiving duties are critical steps toward changing the cultural landscape.

**Conclusion:-**Historical developments highlight the extensive progress women have made toward financial independence, although significant challenges remain. Each milestone-whether legal, economic, or cultural-has contributed to creating an environment where women can increasingly control their finances and make independent economic choices. Understanding this journey is crucial to addressing the current barriers women face in achieving full financial equality.The COVID-19 pandemic has highlighted the fragility of women's financial independence, underscoring the urgent need for systemic changes in both the economy and gender norms. While the pandemic set back years of progress, it also presents an opportunity to rebuild economies in a way that promotes greater gender equality. Achieving long-term financial independence for women requires comprehensive policies that address the root causes of inequality in the labour market, caregiving, entrepreneurship, and access to resources. Only through such reforms can women attain true financial autonomy in a post-pandemic world.Addressing these challenges requires systemic changes that go beyond economic recovery from COVID-19. By tackling workplace discrimination, supporting women in leadership, improving access to education, and creating supportive social policies, societies can move closer to achieving true financial independence for women. Ensuring gender equality in financial independence not only benefits women but also enhances economic growth, resilience, and social equity on a global scale.As we move forward, it is essential to build on historical progress while recognizing that the unique challenges faced by women require targeted, inclusive solutions. By fostering an environment that values women's contributions and supports their economic agency, societies can cultivate a more equitable and resilient world. Achieving true financial independence for women will not only improve individual lives but also strengthen communities and nations, creating a foundation for a fairer and more prosperous future for all.

**References:-**


1. International Labour Organization. (2021). Women in the Labor Market: The Impact of COVID-19.
2. McKinsey & Company. (2020). COVID-19 and Gender Equality: Countering the Regressive Effects.
3. UN Women. (2021). The Impact of COVID-19 on Women.
4. OECD. (2021). Women's Financial Health During COVID-19.

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XXI, Issue - IV, February - 2025
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

# Mental Health of Working and Non-Working Women in Tribal Areas

**Neeta Jain**
**Dr. Pubalin Das**

**Lecturer, psychologist, New Look Girls PG College**
**2. Associate & SR. Consultant psychologist, New Look Girls PG College**

**Introduction:-**Mental health is a crucial aspect of overall well-being, influencing individuals' ability to cope with stress, relate to others, and make choices. In tribal areas, the mental health of women-both working and non-working-is shaped by unique socio-economic and cultural factors. Understanding these influences is vital for developing effective interventions to support their mental health. This exploration aims to provide a comprehensive understanding of the challenges faced by women in tribal areas, the impact of their roles on mental health, and potential strategies for improvement.

**Context of Tribal Areas**

**1. socio-economic background:-**Tribal communities often experience significant socio-economic challenges, including poverty, limited access to education, and inadequate healthcare services. Many tribal areas are remote, with insufficient infrastructure, making it difficult for residents to access essential services. Women, in particular, bear the brunt of these challenges, as traditional gender roles often limit their opportunities for education and employment.

**2. Cultural Influences:-**Cultural norms play a significant role in shaping the lives of women in tribal areas. Traditional beliefs often dictate women's roles within the household and community, influencing their mental health. In many cases, women are expected to prioritize family responsibilities over personal aspirations, leading to feelings of frustration and helplessness.

**Mental Health Challenges for Working Women**

**A. Economic Empowerment and Independence:-**

**1. Benefits of Employment:** Employment can empower women by providing financial independence and a sense of purpose. Many working women report increased self-esteem and improved mental health as a result of their economic contributions.

**2. Balancing Work and Home:** Despite the benefits, working women often face the dual burden of professional responsibilities and household duties. This balance can lead to chronic stress, particularly in traditional households where expectations around domestic work remain rigid.

**B.Work Environment:-**

**1. Job Conditions:** Women in tribal areas often work in agriculture, handicrafts, or local industries, where working conditions may be poor. Long hours, physical strain, and job insecurity can contribute to high stress levels.

**2. Discrimination and Harassment:** In many cases, women face workplace discrimination or harassment, further exacerbating mental health issues. A lack of supportive workplace policies can leave women feeling vulnerable and unsupported.

**C. Social Support Networks:-**

**1. Peer Support:** Working women may benefit from social networks that provide emotional support. Having friends or colleagues to share experiences with can reduce feelings of isolation and stress.

**2. Cultural Barriers:** Despite the potential benefits of these networks, cultural expectations may discourage women from seeking help or openly discussing their mental health challenges.

**Mental Health Challenges for Non-Working Women**

**A. Isolation and Dependence:-**

**1. Social Isolation:** Non-working women often experience social isolation, which can lead to feelings of loneliness and depression. In many tribal societies, their roles are confined to the home, limiting their opportunities for social interaction.

**2. Dependence on Male Family Members:** Many non-working women depend on male family members for financial and social support, which can lead to a lack of agency and lower self-esteem.

**B.Cultural Expectations:-**

**1. Traditional Gender Roles:** Cultural norms often dictate that women should prioritize family responsibilities, leading to feelings of frustration and stagnation. Non-working women may feel trapped in their roles, unable to pursue personal interests or development.

**2. Impact on Mental Health:** These pressures can manifest as anxiety, depression, or other mental health issues, especially if women perceive their roles as limiting.

**C. Lack of Resources:-**

**1. Limited Access to Mental Health Services:** Non-working women may have limited knowledge of mental health issues and available support services, preventing them from seeking help.

**2. Stigmatization:** Cultural stigma around mental health can further complicate the situation, as many women fear judgment or ostracization if they seek assistance.

**Shared Challenges Faced by Both Groups**

**Access to Healthcare:-**

**1. Barriers to Services:** Both working and non-working women in tribal areas often face barriers to accessing healthcare services, including mental health care. Geographic isolation, financial constraints, and cultural stigmas can prevent them from seeking help.

**2. Shortage of Professionals:** The lack of trained mental health professionals in these regions exacerbates the issue, leaving many women without necessary support.

**Socio-Economic Factors:-**

**1. Poverty and Economic Instability:** Economic hardship is a significant stressor affecting the mental health of women. Poverty limits access to basic needs such as nutrition, healthcare, and education, heightening stress levels.

**2. Interconnected Challenges:** The interplay between economic challenges and mental health is particularly concerning in tribal areas, where job opportunities are often scarce and precarious.

**Cultural Stigma:-**

**1. Stigmatization of Mental Health Issues:** Mental health issues are frequently stigmatized in tribal communities. Women may feel ashamed or embarrassed to discuss their struggles, leading to a reluctance to seek help.

**2. Cycle of Silence:** This stigma can perpetuate a cycle of silence and suffering, preventing women from accessing the support they need.

**Recommendations for Improvement**

**Community Awareness and Education:-**

**1. Raising Awareness:** Community education initiatives can help reduce stigma and promote understanding of mental health needs. Workshops and community gatherings can serve as platforms for discussing mental health, encouraging women to share their experiences.

**2. Involving Community Leaders:** Engaging local leaders in awareness programs can enhance credibility and acceptance within the community.

**Improving Access to Mental Health Services**

**1. Community-Based Services:** Developing community-based mental health services is essential. Mobile health clinics and local counseling centers can provide tailored support for women.

**2. Training Local Health Workers:** Training local health workers in mental health awareness can help bridge the gap in service delivery and ensure culturally sensitive support.

**Empowerment Programs**

**1. Skill Development:** Initiatives aimed at enhancing women's skills and employability can foster economic independence and improve mental health. Vocational training programs can open new opportunities for women, providing a pathway to financial stability.

**2. Mentorship Opportunities:** Establishing mentorship programs can empower women by connecting them with role models who can provide guidance and support.

**Strengthening Social Support Networks**

**1. Encouraging Support Groups:** Forming support groups for women can create safe spaces for sharing experiences and coping strategies. These networks can be instrumental in promoting mental well-being.

**2. Building Community Resilience:** Fostering community resilience through collective activities can enhance social bonds and provide emotional support for women.

**Case Studies and Examples**

**Successful Initiatives:-**

**1. Local Empowerment Programs:** Programs aimed at training women in skills such as handicrafts or agriculture have proven successful in several tribal areas. For instance, a women's cooperative in a tribal region may provide training in sustainable farming practices, empowering women economically and enhancing their mental health.

**2. Community Health Workers:** In some tribal areas, community health workers trained in mental health support have been instrumental in providing care and reducing stigma. These workers can offer counseling and facilitate access to resources, improving overall mental health outcomes.

**Challenges in Implementation:-**

**1. Cultural Resistance:** Implementing mental health programs in tribal areas may face resistance due to cultural norms. Programs must be designed to align with community values and involve local leaders to gain

acceptance.

**2. Sustainability:** Ensuring the sustainability of programs can be challenging, especially in resource-limited settings. Ongoing funding and support are crucial for long-term success.

**Conclusion:-**The mental health of working and non-working women in tribal areas is a complex issue influenced by various socio-cultural and economic factors. Addressing these challenges requires a multi-faceted approach that recognizes the unique contexts of tribal communities. By promoting awareness, improving access to services, and fostering empowerment, we can create supportive environments that enhance the mental well-being of women. A collaborative effort involving community members, healthcare providers, and policy-makers is essential for fostering lasting change and improving the lives of women in tribal areas.

**Future Directions:-**As we move forward, it is crucial to continue researching and understanding the mental health needs of women in tribal areas. This includes recognizing the diversity within tribal communities and tailoring interventions to meet specific needs. Ongoing engagement with women themselves will ensure that programs are relevant, effective, and sustainable.

**References:-**


1. "Women in Indian Tribes: A Study in _ Socio-Economic Conditions" (book ) explores the role of tribal women in rural settings, focusing on their economic and social status.
2. National Sample Survey Office (NSSO)- data on employment and unemployment trends, which includes information on the labor force participation rates of women in rural and tribal areas.
3. Reports by the Ministry of Tribal Affairs, Government of India, often address the situation of women in tribal regions, including their employment, education, and health.
   By prioritizing mental health and well-being, we can help create a brighter future for women in tribal areas, empowering them to thrive both personally and within their communities.
4. Chaudhuri, S., & Ghosh, S. (2013). Women in Indian Tribes: A Study in Socio-Economic Conditions. New Delhi: Anmol Publications
5. Desai, A. (2019). Tribal Women and Development in India: Issues and Challenges. Jaipur: Rawat Publications.
6. Ministry of Tribal Affairs, Government of India (Various Years). Annual Reports and Statistical Data 2017-18. New Delhi: Ministry of Statistics and Programme Implementation.
7. Rao, A. S. (2009). Tribal Women and Rural Development: A Study of Empowerment. New Delhi: Sage Publications.
8. Sharma, K. (2011). Women in Rural India: Challenges and Opportunities. New Delhi: Routledge India.
9. Thakur, M. (2017). Empowerment of Tribal Women in India: Issues and Strategies. Delhi: Kalpaz Publications.
10. Tiwari, S. & Gupta, P. (2021). "Economic Participation of Tribal Women: Insights from the Indian Context". Journal of Rural and Tribal Studies, 25(2), 129-145.
11. Vaidya, S., & Kumar, A. (2018). Gender and Development in the Tribal Areas of India. New Delhi: Oxford University Press.

स्वत्वाधिकारी,प्रकाशक,मुद्रक डॉ.मोहन बैरागी द्वारा अक्षरवार्ता पब्लिकेशंस से मुद्रित व 43, क्षीर सागर, द्रविढ़ मार्ग, उज्जैन, मप्र,-456006 से प्रकाशित।
सभी विवादों का न्याय क्षेत्र उज्जैन रहेगा। संपादक- डॉ. मोहन बैरागी, संपर्क :-8989547427, **Email- aksharwartajournal@gmail.com**